ISSN : 2321-3922
अक्टूबर – 2016
BIHHIN05394
वर्ष – 2 अंक–6

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–2016

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी
प्रवीण कुमार

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

विशिष्ट सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्री शिवनन्दन प्रसाद सिंह
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–2, अंक–6

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 09570838880
वेबसाईट : www.sambhavya.net
www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–2, अंक–6

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः नि:शुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 89 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल–2017 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल करें या कोरियार तथा डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
dnj.susambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

सुसंभाव्य

अक्टूबर–2016

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

अनुक्रम

1.	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
2.	आलेख	वो भूख पढ़ती थी, वो भूख लिखती थी	सपना मांगलिक	06
3.	ग़ज़ल	बेख़ुदी में ही मैं भटकाया गया हूँ	दिनेश तपन	07
4.	ललित निबंध	मधुर याद बचपन तेरी	डॉ० ओंकार नाथ चतुर्वेदी 'प्रणव'	08
5.	कविता	पथिक/स्वर्ग की शापित आप्सरा/बूंदों का संदेश	डॉ० अनुराधा 'ओस'	09
6.	आलेख	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० हीरा लाल बाछोतिया	10
7.	आलेख	बंगाल विभाजन–1905	डॉ० उषा निगम	12
8.	पुस्तकचर्या	स्त्री मन की खुलती गिरहें	राहुल देव	14
9.	आलेख	सामाजिक न्याय की अवधारणा	पंकज शुक्ला	15
10.	ग़ज़ल	... ...	डॉ० विज्ञान व्रत/केशव शरण/डॉ० भूपेन्द्र मंडल/धर्मेन्द्र गुप्त साहिल	17
11.	कविता	अल्हड़ नदी के प्यार में	सीमा असीम सक्सेना	18
12.	ग़ज़ल	मेरे महबूब तेरी याद भुलाऊँ कैसे	पारस कुंज	18
13.	कविता	बदलती कविता/प्रेयसी/रिश्तों के बदलते अर्थशास्त्र	कृष्ण कुमार यादव	19
14.	कहानी	सिसकते पहाड़	रणीराम गढ़वाली	20
15.	कविता	.....	हीरा प्रसाद हरेन्द्र	24
16.	कहानी	लेकिन	अमित चौवे	25
17.	लघुकथा	आखिर क्यों : मेरी दृष्टि में	राजेन्द्र प्रसाद मोदी	31
18.	समीक्षा	उसने कहा था : सौ साल का सफर	डॉ० अरुण कुमार वर्मा	32
19.	लघुकथा	बर्थ डे पार्टी	प्रतिभा रामकृष्ण श्रीवास्तव	33
20.	समीक्षा	उधार की हँसी : एक दृष्टि	डॉ० विद्यारानी	34
21.	कविता	इस बार नहीं/बेटियाँ	महिमा श्री	35
22.	लघुकथा	एक भूली दास्ताँ प्यार की	अखिलेश चन्द्र श्रीवास्तव	36
23.	लघुकथा	लौट आई खुशियाँ	डॉ० नीतू सिंह	37
24.	समीक्षा	डॉ० विवेकी राय के उपन्यास में लोककथा	सीमा पटेल देवी	38
25.	कविता	हस्तिनापुर लुट चुका है	डॉ० अश्विनी	39
26.	भेंट–वार्ता	ग़ज़लकार अनिरूद्ध सिन्हा से डॉ० कुसुमलता सिंह	डॉ० कुसुम लता	40
27.	कविता	भूमिका	जेन्नी शबनम	41
28.	समीक्षा	सोच विचार की भव्यता का मानक अंक	डॉ० राम सुधार सिंह	42
29.	कविता	रूह के करीब/शहीद का गर्म लहू/सभी अकेले..	मंजुला उपाध्याय 'मंजुल'/नसीम साकेती/देवेन्द्र कुमार मिश्र	43
30.	कविता	आदमी/प्यासी चिड़िया/चढ़ेंगे आतंकी...	रजनी गुप्ता/महेन्द्र देवांगन/सविता मिश्रा	44
31.	लघुकथा	गुस्से का घोल	उर्मिला प्रसाद	45
32.	व्यंग्य	मेरे दौर का परम श्रद्धेय	अशोक गौतम	45
33	लोकवाणी			47

महाश्वेता देवी की याद में

तू नहीं तेरी सौगात मेरे ज़ेहन में ज़िन्दा रहेगी
तू है अब अग्निगर्भ में, मनीष–धारित्री पुत्री रहेगी
मौत के उम्रकैद में, कृष्ण द्वादशी के देश में
मातृ छवि की छाँव में, अमृत संचय लिए तू सदा ज़िंदा रहेगी
क्लांत कौरव के काल में, अग्नि शिखा की गाल में
तू ज़िंदा रहेगी स्याही सी कलम की हर खाल में
उपदेश सी तू, बन के क्यूँ चली गई
अनन्त काल तक राह सी क्यूँ चली गई
हर शब्द सी लोरी सुनता रहूँगा
हजार चौरासी की माँ तुझे याद करता रहूँगा।

—रजनीश बाबा मेहता

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

व्यक्ति का सामाजिक होना, इसमें इसके संस्कारों का हाथ होता है। संस्कार या तो जन्मजात होते हैं या व्यक्ति उन्हें पर्यावरण से अर्जित करता है। यह चेतन स्मृति की तरह मौजूद नहीं रहते। शिक्षा, अध्ययन तथा अभ्यास से संस्कार या रुचियों से प्रतिष्ठापित होता है। विलक्षण मनोवृत्तियों के लिए जो मनुष्य को उद्‌बुद्ध करते हैं, उन्हें भी संस्कार कह सकते हैं। यह मानवीय आकलन का मामला साहित्यकारों के सौंदर्य का एक सामाजिक गुण है। सौंदर्य एक विचार, एक अभिप्रेत है, जिसका अवधारण केवल मनुष्य में होता है। प्रकृति भी केवल उसी के लिए सुन्दर है, जो कलाकार की दृष्टि से उस पर मनन करता है। साहित्यकार की यह कलात्मक दृष्टि नैसर्गिक सौंदर्य का अन्वेषण कर समाज के नवनिर्माण में महत्त्वपूर्ण, प्रभावकारी तथा सकारात्मक भूमिका निभाती है। अपनी इसी दृष्टि को भाव, भाषा, शिल्प, बिम्ब, प्रतीक एवं संवेदना के स्तर पर कलात्मक स्वरूप प्रदान कर साहित्यकार व्यक्ति में सामाजिक, सांस्कारिक एवं तैजस्विक भावों की चैतन्यता को जाग्रत करते हैं। धन्य हैं हमारे साहित्य और साहित्यकार जिन्होंने जीवन में विसंगतियों, विडम्बनाओं, क्रूरताओं और नये मुखौटे को उघारते हुए सामाजिक चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया है।

साहित्य और कलात्मक मूल्यांकन तभी तक स्वच्छन्द रहते हैं, जब तक कि साहित्यकार या कलाकार अपनी सीमा का अतिक्रमण नहीं करते हैं। उनकी स्वच्छंदता तभी तक अक्षुण्ण है, जब तक कि वे वर्ग संघर्ष, सामाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में विकृत प्रवृत्तियों से शुद्ध होकर, प्रत्यक्ष पूँजीवादी दबाव से अपने–आपको बचाये रहते हैं।

आज लेखन–विधि की प्रत्येक नूतनता साहित्यिक क्रांति का स्वरूप ले रही है और बड़े गर्व से घोषित करती है कि प्रत्येक पुरानी चीज रद्दी की टोकरी में रखा जाए। आज की प्रतिभा जिस सीढ़ी से शिखर पर चढ़ती है, उसे पुनः भविष्य के लिए उपयुक्त नहीं समझती, जबकि सौंदर्य का मानव जिन अलग–अलग स्थितियों और क्षेत्रों से हों, वे सहृदय की भावना से निजता का संबंध रखते हैं। इसलिए रचनाकार इन द्वन्द्वात्मकता से दूरी बनाकर ही सृजन–प्रक्रिया को प्रभावशाली स्वरूप दे सकते हैं। आधुनिक बोध भी शाश्वत साहित्य के सान्निध्य में सार्वजनीनता के तत्त्व को ग्रहण करता है। इस प्रकार वे परस्पर विरोधी न होकर एक–दूसरे के पूरक हो जाते हैं।

आज शहर में इंसानी तादाद बढ़ती जा रही है, किन्तु इंसानियत उसी अनुपात में घटती जा रही है। इसके अंदर कुंठा, डाह, वासना, लोभ आदि की परतें न जानें कितनी पड़ती जा रही हैं। सभ्यता का मापदंड सिर्फ अंतर की वास्तविकत भावनाओं पर न खुलनेवाला ताला जड़ा है। इसी चक्कर में रिश्तों की चाभी ऐसी गुम हो गई है कि पति का पत्नी, बेटे का बाप और भाई का भाई से भरोसा उठ चुका है। परिवार पत्तों की तरह विखरने लगे हैं। रिश्ते औपचारिकता के पर्याय बन चुके हैं। ऊपरवाले भी आज मानवीय नियति के प्रति जरा भी हमदर्द नहीं रहे। उनका भी फर्ज मात्र जन्म देकर नियत समय पर उठा लेना ही रह गया है।

सभ्यता के शिखर पर बैठे इंसान की लुप्त होती इंसानियत टूटती–विखरती मर्यादाओं को बचाने के लिए संजीवनी के साथ साहित्यकार को ही आगे आना होगा। क्योंकि साहित्यकार ही जीवन–जगत को निरंतर बेहतर बनाने के सपनों को साकार कर सकता है। राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का जीवन पर पड़नेवाले दुष्प्रभावों से बचा सकता है।

'सुसंभाव्य' आम आदमी के लिए नई आशा और विश्वास की भावना, मानवीय चरित्रों के अंतर्मन की गुत्थियों को खोलने का एक सफल कोशिश है। इसके रचनाकारों ने पूरे आत्मविश्वास के साथ जीवन को सौंदर्य बनाने का भरसक प्रयास किया है। पाठकों को भी आज ऐसी जीवन प्रक्रिया की तलाश है, जो समाज के नव–निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

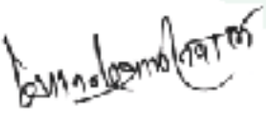

आलेख

वो भूख पढ़ती थी, वो भूख लिखती थी

महाश्वेता देवी

सपना मांगलिक
कमलानगर, आगरा
मो. 9548509508

ब्रेख्त के अनुसार–'भूखा आदमी किताब की ओर जाता है, यह उसका एक हथियार है।' उसी तरह महाश्वेता देवी के अपने जीवन में भी कम संघर्ष नहीं था, इसलिए वह उन शोषित और वंचितों का दु:ख पढ़ सकती थीं, जिनके लिए सरकार ने अनगिनत कानून तो बना रखे हैं, मगर उन कानूनों की जानकारी और सहायता प्रदान करने के बारे में कभी सोचा ही नहीं। महाश्वेता ऐसे ही वंचित भूखे उदरों की मूक चीत्कार थीं और चीत्कार को समाज के सामने लाना और उनकी आवाज बनकर कानून का दरवाजा खटखटाना उनके जीवन का मिशन था, जिनके लिए उस देवी ने अपने निजी जीवन को ही ताक पर रख दिया। अन्ना हजारे भी कहते हैं कि 'जो जिंदा रहने के लिए मरते हैं, वह कभी जिंदा नहीं रहते और जो मरने के लिए जिंदा रहते हैं, वो अमर हो जाते हैं दुनिया के लिए।' उनका शरीर लोगों के मध्य से उठता है, मगर उनकी याद हर एक दिल में जिंदा रहती है, उनकी मौत से सैकड़ों साल बाद भी दुनिया उन्हें उतने ही सम्मान और प्रेम से याद करती है। महाश्वेता देवी ने समाज से लिया नहीं, सिर्फ दिया। अपने घर–परिवार का सुख–चैन ,अपनी सेवा, अपना सम्पूर्ण जीवन उन्होंने शोषित और वंचितों पर खर्च किया। वह जितनी भावुक और सशक्त समाजसेविका थीं, उससे भी कहीं ज्यादा बेहतर एक लेखिका थीं और इससे भी ज्यादा प्रभावशाली वक्ता भी थीं। कहते हैं कि दो हजार छह के फ्रंक्फार्ट पुस्तक मेले में भारत एक ऐसा देश था, जिसे दोबारा आमंत्रित किया गया था और उस विश्वप्रसिद्ध पुस्तक मेले के शुभारम्भ में महाश्वेता देवी ने ऐसा भावनापूर्ण और दिल छू लेनेवाला भाषण दिया कि हर एक सुननेवाले की आँखों से अश्रु की धारा बह निकली। उन्होंने राजकपूर के गीत की प्रसिद्ध पंक्तियों को इस्तेमाल करते हुए कहा कि 'भारत में यह वो समय है, जब जूता जापानी पहना जाता है, पतलून इंगलिशतानी पहनी जाती है, टोपी रूसी होती है, मगर दिल जैसा कि हमेशा था और युगों–युगों तक रहेगा, हिन्दुस्तानी है। महाश्वेता की कलम किसी यश या पुरस्कार की भूखी नहीं थी, न ही अपनी लेखनी से धनोपार्जन करना चाहती थीं। कहते हैं कि शोध के बिना बोध असंभव है और महाश्वेता पूरे शोध के बाद ही अपनी लेखनी को गति देती थीं। वो उन छपास की भड़ासवाले तमाम लेखकों की दौड़ से अलग थीं, जो यह समझते हैं कि पाठक को जो कुछ भी अधकचरा ज्ञान परोसा जाएगा, वह उसको भूखे बिलाव की तरह से लपक लेगा। महाश्वेता देवी से पहले बांग्ला साहित्य में पारिवारिक द्वंद्वकी कहानियाँ होती थीं। मगर महाश्वेता देवी पहली ऐसी लेखिका हैं, जिन्होंने नक्सलवाद आंदोलन के दौरान जितनी लोगों ने यातनाएँ सहीं, उनपर जितने अत्याचार हुए, उन सबको अपनी कहानियों का विषय बनाया। उनकी कहानियों का पात्र राजा–रानी की तरह रूमानी और अलादीन के चिराग की तरह पलक झपकते ही इच्छा पूरी करने या सपने सच करनेवाले काल्पनिक नहीं होते थे, वरन् आम जिंदगी के संघर्षशील जुझारू सच्चे नायक होते थे, जैसे कि 'बिरसा मुंडा।' उन्होंने एक इंटरव्यू में कहा था–'हम सभी लेखकों को रोजमर्रा की जिंदगी को नजदीक से देखे–सुने बिना लिखने का कोई अधिकार नहीं है। यह जरूरी है कि हम जनता तक जाएँ और उनकी वास्तविक जिंदगी से जुड़ी कहानियों को समझें और हमारे पास जो कुछ है, वो उन्हें दें।' एक बार महाश्वेता देवी आदिवासियों के साथ भोजन पर बैठीं तो देखी, भात के साथ चुटकी भर नमक रखा है। उन्होंने आदिवासियों से पूछा, 'इस भात को कौन सानेगा?' आदिवासियों में से एक ने उत्तर दिया, 'हम इसे भूख से सानेंगे।' आदिवासी का यह उत्तर इन्हें द्रवित कर गया और इस घटना का जिक्र उन्होंने अपनी किताबों के साथ अपने दिए विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के इंटरव्यू में भी दिया।

बिहार, मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाके महाश्वेता देवी के कार्यक्षेत्र रहे। वहाँ इनका ध्यान लोढ़ा तथा शबरा आदिवासियों की दीन दशा की ओर अधिक रहा। इसी तरह बिहार के पलामू क्षेत्र के आदिवासी भी इनके सरोकार का विषय बने। इनमें स्त्रियों की दशा और भी दयनीय थी। महाश्वेता देवी ने इस स्थिति में सुधार करने का संकल्प लिया। 1970 से महाश्वेता देवी ने अपने उद्देश्य के हित में व्यवस्था से सीधा हस्तक्षेप शुरू किया। उन्होंने पश्चिम बंगाल की औद्योगिक नीतियों के खिलाफ भी आंदोलन छेड़ा था तथा विकास के प्रचलित कार्य को चुनौती दी। वह आदिवासियों पर लिखने मात्र से अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझती थीं, अपितु उनके हाथों से बने हस्तशिल्प के सामान की प्रदर्शनी लगाना और उनका विक्रय करवाने से लेकर उनके होनहार बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना और उनकी तरफ से कानूनी लड़ाई लड़ने के कार्य भी वह किया करती थीं, तभी तो उन्हें सभी प्रेम से 'महाश्वेता माँ' कहकर संबोधित करते थे। जितनी उच्च लेखन क्षमता और करुणामय दिल था उनका, उतनी ही सादगी पसंद भी थीं। समाचार पत्रों और टी.वी. चैनलों को इंटरव्यू देते समय वह कभी अपनी वेश–भूषा और शृंगार पर ध्यान नहीं देती थीं। अगर कोई इस बावत उनको ध्यान भी आकर्षित करता तो उनका जवाब होता–'हमारी साड़ी देखेगा या हमारा चूल देखेगा।'

महाश्वेता का साहित्य :

बाहर के देशों में भारतीय साहित्य को जिन रचनाओं की बदौलत जाना गया, उनमें महाश्वेता की रचना भी हैं। महाश्वेता देवी अपने शब्दों का अमीर के बच्चों की भाँति कल्पनाओं से शृंगार नहीं करती थीं, अपितु वह गरीब के बालकों की तरह उन्हें अनुभव और भूख की तपती आग में तपाकर उन्हें जीवन की कड़वी सच्चाइयों का एक आईना बनाती थीं। आदिवासियों के हक के लिए कानूनी लड़ाई लड़ना, उनके क्षेत्रों का दौरा कर उनकी समस्याओं को सुनना–इन सबपर अपना पूरा समय और ऊर्जा खर्च करने के उपरांत भी वह लेखन के लिए समय निकाल ही लेती थीं, तभी तो सौ उपन्यास और बीस कथा संग्रह वह अपने खाते में जोड़ पायी। उनका खुद का कहना था कि 'मैं कितनी भी भागदौड़ क्यों न कर लूँ, रचनाएँ मेरे सर पर सवार हो जाती हैं।' तीन–तीन कहानियाँ एक दिन में और 'हजार चौरासी की माँ' जैसा उपन्यास महज चार दिन में उन्होंने पूरा किया था। कभी–कभी वह सुबह लिखने बैठतीं और रात के डेढ़ बज जाते लिखते–लिखते। सृजन के लिए इतना समर्पण तो विरलों में ही देखने को मिलता है। वह हर एक रचना

को अथक परिश्रम और शोध के बाद गहरी संवेदनात्मक दृष्टि से परखतीं और फिर अपने भावों की स्याही से रच डालतीं आम आदमी की खास गाथा। जिसका एक उदाहरण उनका प्रसिद्ध उपन्याय 'अरण्येर अधिकार' है, जो कि हिन्दी में 'जंगल के दावेदार' के नाम से प्रकाशित हुआ है, इस उपन्यास को लिखने के लिए महाश्वेता देवी ने काफी लंबा समय राँची और उसके आसपास के इलाके में बिताया। अपने जमीनी हक के लिए मुंडा लोगों के संघर्ष के विरुद्ध ब्रिटिश हुकूमत का कुटिल अभियान, मुंडाओं का सहज स्वभाव का तथ्य संग्रह करने के साथ ही उन्होंने वहाँ के आदिवासियों के जीवन को नजदीक से देखा और उनके संघर्षों से जुड़ गईं। उन्होंने साहित्य के माध्यम से जनइतिहास को सामने लाने का वह काम किया, जो उनके पहले नहीं हुआ था। 'जंगल के दावेदार' उनकी ऐसी कृति है, जिसे 1979 में जब साहित्य आकदमी पुरस्कार मिला तो आदिवासियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई थी। उन्हें लगा जैसे यह पुरस्कार महाश्वेता देवी को नहीं, अपितु उन्हें मिला है। उन्होंने अपने आदिवासी वाद्ययंत्र ढाक को बजाकर इस खुशी को जाहिर किया।

'झांसेर रानी' के लिए महाश्वेता ने झाँसी की रानी के भतीजे गोविंद चिंतामणि से पत्र व्यवहार शुरू किया। सामग्री जुटाने और पढ़ने के साथ–साथ उत्साहित होकर महाश्वेता ने लिखना भी शुरू कर दिया। फटाफट चार सौ पेज लिख डाले। पर इतना लिखने के बाद उनके मन ने कहा–'यह तो कुछ भी नहीं हुआ। उन्होंने उसे फाड़कर फेंक दिया। झाँसी की रानी के बारे में और जानना पड़ेगा। तो इसके लिए छह वर्ष के बेटे नवारुण भट्टाचार्य और पति को कलकत्ता में छोड़कर अंततः झाँसी ही चली गई। तब न पति के पास नौकरी थी, न उनके पास। 'रुदाली' कहानी में महाश्वेता ने औरत की अस्मिता का प्रश्न उम्दा तरीके से उठाया तो 'अक्लांत कौरव' में विकास और छद्म प्रगतिवाद की तीखी आलोचना की। 'चोट्टि मुंडा और उसका तीर' में आदिवासी समाज की हकीकत को दर्शाया गया है। 'अमृत संचय' उपन्यास 1857 से थोड़ा पहले आरंभ होता है। 'अमृत संचय' में प्रतिकूल स्थितियों में भी जीवन के प्रति जो ललक है और प्रतिरोध की जो चेतना है, उस चेतना पर महाश्वेता की बराबर नजर रही है। गोरों के विरुद्ध ही वह चेतना नहीं थी, बल्कि आजाद भारत में भी प्रतिरोध की चेतना रही है, जिसे महाश्वेता पूरे साहस के साथ अभिव्यक्त करती है। 'आपरेशन बसाईटुडु', 'जगमोहन की मृत्यु' में महाश्वेता की वेदना और संघर्ष की स्मृति भी संचित है। महाश्वेता इतिहास, मिथक और वर्तमान राजनैतिक यथार्थ के तानेबाने को संजोते हुए सामाजिक परिवेश की मानवीय पीड़ा को स्वर देती हैं। सर्कस की पृष्ठभूमि पर लिखा 'प्रेमतारा' प्रेम की कथा है, फिर भी उसकी पृष्ठभूमि में सिपाही विद्रोह रहता है। महाश्वेता ने 'हजार चौरासी की माँ' में नक्सल आंदोलन को माँ की नजर से देखा। नक्सल आंदोलन की वे साक्षी रही थीं। जनसंघर्षों ने उनके जीवन को भी परिवर्तित किया और लेखन को भी। 'हजार चौरासी की माँ' उस माँ की मर्मस्पर्शी कहानी है, जिसने जान लिया है कि पुत्र का शव पुलिस हिरासत में कैसे और क्यों है?

महाश्वेता देवी ने लेखन की शुरुआत कविता से की थी, पर बाद में कहानी और उपन्यास लिखने लगीं। 'अग्निगर्भ', 'जंगल के दावेदार', '1084 की माँ', 'माहेश्वर', 'ग्राम बांग्ला' सहित उनके 100 उपन्यास प्रकाशित हैं। बिहार के भोजपुर के नक्सल आंदोलन से जुड़े एक क्रान्तिकारी के जीवन की सच्ची कथा उपन्यास के रूप में उन्होंने 'मास्टर साहब' में लिखी। इसे उनकी बहुत ही महत्त्वपूर्ण कृति माना गया। महाश्वेता देवी वामपंथी विचारधारा से जुड़ी रहीं, पर पार्टीगत बंधनों से अलग ही रहीं। महाश्वेता देवी ने हमेशा वास्तविक नायकों को अपने लेखन का आधार बनाया।

महाश्वेता देवी के निधन से साहित्य जगत में शोक की लहर फैल गई। उनके निधन पर पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने कहा कि बंगाल ने अपनी माँ को खो दिया है। यह साहित्य जगत के लिए अपूरणीय क्षति है। उन्होंने एक ट्वीट में लिखा–'भारत ने एक महान लेखक खो दिया है। बंगाल ने एक ममतामयी माँ को खोया है। मैंने एक निजी मार्गदर्शक को खो दिया है। ईश्वर महाश्वेता दी की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।'

ग़ज़ल

दिनेश तपन
भीखनपुर, भागलपुर
मो.8409930022

बेख़ुदी में ही मैं भटकाया गया हूँ
मैं यहाँ आया नहीं लाया गया हूँ
रौशनी तक़दीर मेरी लिख रही थी
तीरगी की ज़द में पहुँचाया गया हूँ
एक दोज़ख सी जगह में बंद रखकर
बारहा गुंडों से पिटवाया गया हूँ
चीखना, रोना, सिसकना सब मना था
पर कटे पंछी सा तड़पाया गया हूँ
क्या पता किसने कहाँ कब बम लगाए
कह रहे वे मैं वहाँ पाया गया हूँ
न्याय की दहलीज़ पर ये न्याय कैसा
झूठ खातिर झूठ कहलाया गया हूँ
कट गयीं शाखें मगर ज़िंदा रहा मैं
वो शज़र मैं जड़ से अलगाया गया हूँ
ऐ तपन देखो शहादत की निशानी
मैं इसी फंदे से लटकाया गया हूँ।

ललित निबंध

मधुर याद बचपन तेरी....

डॉ. ओंकारनाथ चतुर्वेदी 'प्रणव',
कोटा (राजस्थान)

आज बहुत दिनों बाद सुभद्रा कुमारी चौहान याद आ रही है.... जिन्होंने मेरे और आपके बचपन को आँगन में किलकते देखा था, रूठते और मनाते देखा था–

रोना और मचल जाना भी, क्या आनन्द दिखाते थे,
बड़े–बड़े मोती से आँसू, जयमाला पहनाते थे।
बार–आर आती है मुझको, मधुर याद बचपन तेरी।

बचपन हर व्यक्ति के जीवन का मूलधन है, जहाँ संस्कार और चरित्र का अक्षय धन मिलता है। यदि मिल जाए तो बुढ़ापा है उस मूलधन का ब्याज। एक अविस्मरणीय अतीत का पुण्य स्मरण करने में ही मन पुलकित हो उठता है। मन देह की कारा से मुक्त होकर पुनः तुतलानेवाला बच्चा बन जाता है। आँगन में श्रीकृष्ण घूमने लगते हैं–'घुटरन चलत रेनु तनु मंडित, मुख दधि लेप किये।' और कौए को अपने साथ खाने के लिए आमंत्रित करते हुए दिखाई देने लगते हैं। ऐसी ही मधुर यादों से भरे होते हैं, हमारी जीवन यात्रा के वो पुलकित क्षण, जिन्हें हम बचपन के रूप में वक्त बीत जाने पर याद करते हैं।

बाबा–दादी, नाना–नानी ये पात्र तो हर व्यक्ति के जीवन की स्थायी स्मृति धरोहर हैं, जिनमें बाद में जुड़ते हैं–बुआ–फूफा, मामा–मामी, भैया–भाभी के साथ समवयस्क भाई–बहिन, सहपाठी, पड़ोसियों के बच्चे, जिनके घर की छत पर धमाचौकड़ी करने में मजा आता था। छत पर झुक आई नीम की डाली पर झूलने में मजा आता था। वे अविस्मरणीय क्षण थे। दशकों पूर्व घर की छतों पर लोहे के कड़े लगे होते थे, जो बचपन का पालना बनते थे और थोड़ा बड़ा होने पर झूला। उन दिनों संयुक्त परिवार की परंपरा सामाजिक मिठास का पर्याय बनी हुई थी। स्वार्थमुक्त सब जीते थे–सबकी सुख–शान्ति के लिए। इसलिए हर त्योहार की अलग गंध थी। अपनेपन का अलग मजा था–सौहार्द का, भाईचारे का। हर घर में त्योहार के आगमन के साथ स्वजनों, परिजनों की प्रतीक्षा की जाती थी। घर के सदस्य नौकरी के कारण भले ही दूर रहते थे, पर मन से जुड़े रहते थे। त्योहारों पर सभी सपरिवार माता–पिता, दादा–दादी से मिलने आते थे। गली और गाँव के दद्दा–चच्चा के चरण स्पर्श के साथ एक प्रश्न उभरता था–अरे! तू कलकत्ता से कब आयो है?और फिर बच्चों की किलकारियों से गूँजते आँगन, तपती टीन में अम्मा की साड़ी और बाबूजी की धोती लपेटे कौशल्या और दशरथ बने बच्चे रामलीला का अनुकरण प्रस्तुत करते थे। गली के सबसे शैतान बच्चे के मुँह को रोली से रंग कर कमर पर रस्सी लटकाकर हनुमान बनाया जाता था। राम–सीता के बीच तुलसीदास या राधेश्याम कथावाचक को छोड़कर बच्चे खेल–ही–खेल में लोट–पोट कर देनेवाली रामायण रच डालते थे। जो पात्र रावण बनता था या बनाया जाता था, उसकी सब लोग खूब दुचाई करते थे। रासलीला देखने के लिए पड़ोस की चाची के घर से घुँघरू मँगाये जाते थे। भाभी ढोलक पर थाप देती तो दादी रुच–रुचकर राधा–कृष्ण को सजाती थी, फिर ढोलक की थाप पर गीत उभरते थे–'मोहन हमारे मधुबन में तुम आया ना करो, जादू भरी ये बाँसुरी बजाया न करो।' या 'नगरी–नगरी द्वारे–द्वारे ढूँढूँ रे साँवरिया' के साथ ढेर सारे भजन– कीर्तन, नाच–गाने होते थे। बिना त्योहार के ही रसमय कार्यक्रम बन जाता था। हम बच्चे दुबककर अम्मा के पास बैठे रसविभोर होते थे। उन दिनों रेडियो और दूरदर्शन तो दुर्लभ थे। इसकी कमी बच्चे परस्पर पहेलियाँ पूछकर या अन्त्याक्षरी के माध्यम से अपने सराहनीय स्मरण शक्ति का परिचय देते थे। उस जमाने में अम्मा तो ढेर सारे सदस्योंवाले परिवार के लिए अधिकतर रसोई में व्यस्त रहती थी। दादी पास में सुलाकर कहानी सुनाया करती थी। बच्चे पड़े–पड़े चिल्लाते रहते थे, दादी मेरी तरफ मुँह करो। दादी जोर से बोलो न! और बेचारी दादी बच्चों को थपथपाते खुद ही सो जाती थी। फिर बच्चों को माताएँ रसोई घर से फुर्सत पाकर दूध पिलातीं और एक–एक उनींदे बच्चे को उसके कमरे में पहुँचाती थीं।

समवयस्क बुआ के साथ आइस–पाइस, छिया–पताई, आँखमिचौनी, लुकाछिपी, कोडा जमाल शाही, इकड़ी–दुकड़ी, तकियों से राम–रावण युद्ध, जिसमें तकिये फट जाते थे, शयनकक्ष में रूई के फाये छोटे–छोटे बादलों की तरह बिखर जाते थे और फिर होती थी चाचा द्वारा धम्मक धैया, मार कुटैया के साथ झाड़ू लगाने का। फटे पड़े बिखरे गद्दे तकियों को व्यवस्थित करवाया जाता था। उस पिटाई में एक विस्मरणीय मजा आता था, उसमें अपनेपन की एक गंध थी। ऐसी मिठास थी कि जिसका स्मरण करते ही मन पुलकित हो जाता था।

उन दिनों 'इनडोर गेम्स' में चंगा पो, चौपड़, शतरंज, ताश के अलावा रस्सी कूदना, झूले पर पैंगे भरना, चाँदनी रात हो तो भैया–भाभी–मौसी के साथ भरा समन्दर गोपी चन्दर, बोल मेरी मछली कितना पानी.... इत्ता पानी, इत्ता पानी कह–कहकर चाँदनी की परछाईं में दुबक जाया करते थे और खिलती चाँदनी में नहाने का अभिनय किया करते थे। बड़े सुन्दर दिन थे वे। उन दिनों सर्वग्रासी अर्थहीन आधुनिकता ने भारतीय जन–मानस को छुआ नहीं था। लड़कों को मजबूत और स्वावलंबी, निर्भीक, निडर, सेवाभावी बनाने के लिए ढेर सारे खेल थे, ढेर सारे उपादान थे। नदी में तैरना, तैरकर नदी के चौड़े पाट को पार करना, छतरी की ऊँचाई से पानी में पालती मारकर भचाक से कूदना, कबड्डी खेलना, अखाड़े में कसरत करना, गुल्ली–डंडा, बैट–बल्ला, सात पत्थरों का पिरामिड बनाकर सतोल्या खेलना, खो–खो खेलना, तिरो लो पाती रे, जीमन पर आठ वर्ग बनाकर लँगड़ी खेलते हुए पत्थर को बाहर निकालन, लड़कियाँ रस्सी कूदने में, गुड्डे–गुड़ियों के खेलने में, सैंझा मैया बनाने में, नाचने–गाने में व्यस्त रहती थीं। ये सभी खेल व्यायाम थे, प्राणायाम थे। उसके बाद दो पश्चिमी खेल हॉकी और फुटबॉल आये। दोनों खेल बड़े लोकप्रिय हुए। हॉकी में तो कभी भारत विश्व चैंपियन बन गया था।

अन्त्याक्षरी के माध्यम से दोहे, सोरठे, छप्पय, सवैये, कुंडलियाँ छन्द का स्मरण एवं वाचन पीढ़ियों को साहित्य से जोड़ता था। वे कविताएँ वाचक के जीवन का मार्गदर्शन करती थीं और आज भी कर रही हैं। पतंगबाजी आसमान में ऊँची उड़ान भरने का हौसला देती थी।

होली–दिवाली–दशहरा तो भारतीय समाज के मात्र त्योहार नहीं, मिलनोत्सव हैं। साथ ही डाँडिया, महारास, रामलीला, डंका चौथ, गणेश उत्सव, नवरात्र एवं कन्या पूजन, दीवारों पर सैंझा का रंगोली–मंडन आदि ने भारतीय बचपन को मिठास की ऐसी सौगात दी है, जो पूरी उम्र रजनीगंधा की तरह महकती रहती है।

भारतीय समाज ने बिना किसी लिंगभेद के बचपन को पूजा है, नवाजा है, सँवारा है और यही समाजरूपी इस विशाल वटवृक्ष की सुदीर्घजीवी होने का कारण है। हमारे पूर्वजों ने संपूर्ण मनोविज्ञान के अनुरूप आश्रम व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था को जन्म दिया था। आज उसमें उपजी हर विकृति की आधुनिक परिभाषाएँ दी जा रही हैं, समर्थन किया जा रहा है। पारिवारिक सम्पत्ति के बँटवारे के कारण एक ही डायनिंग टेबल पर खानेवाले सदस्य अब नफरत की बारूद भरी बन्दूकें लिये घूम रहे हैं। बचपन खो गया है। बच्चे या तो क्रिकेट, बेडमिंटन, टेनिस, टेबिल टेनिस, स्क्वेश, जिम–क्लब खेलने गये हैं या किसी रेव पार्टी में व्यस्त हैं या कम्प्यूटर गेम खेलने में व्यस्त हैं। महानगरों में बचपन को ही उजाड़ डाला है, अब ना तो खुले आँगन बचे हैं और ना ही चाँदनी नहाई छत है। इनके तो दर्शन ही दुर्लभ हो गये हैं। ए.सी. शयन ने चाँद छीन लिया, चाँदनी छीनी, खुला आसमान–चकमते तारे, आकाशगंगा छीनी, ध्रुवतारा छीना, अरुन्धती नक्षत्र छीना, जो अखंड सौभाग्य के रूप में फेरे सम्पन्न हो जाने के बाद माँग में सिन्दूर भरी नववधू को पंडित जी खुले आसमान के नीचे अरुन्धती नक्षत्र के दर्शन कराते थे, ये सब खो गये हैं। आज नारी के होंठो पर लिपिस्टिक इतनी गहरी चिपकी है कि होंठ ही चिपक गये हैं। उसके कंठ से गीत ही रूठ गये हैं। घरों से आरती, भजन, प्रभाती खो गये हैं। अब मशीनें पोचा लगा रही हैं। गाँव की हवेलियाँ सुनसान पड़ी हैं, किलकारियाँ थम–सी चली हैं। दादी मर रही हैं– मरने से पहले दादी एक गिलास पानी माँग रही है। बहू ब्यूटी पार्लर पर गई है, बाल कटवाने। बेटी ऑफिस खेलने गई है। ढाई साल से बड़े नाती–पोते किड्स स्कूल में पढ़ने गये हैं। प्राइमरी के छात्र नाती–पोते कम्प्यूटर गेम खेलने में व्यस्त हैं। सारा घर सन्नाटे में डूबा है। यह सन्नाटा 21वीं सदी का है। आनंद, उमंग, उत्साह भरी बीसवीं सदी तो बीत गई। यह सन्नाटा है 21वीं सदी का, जो दिन में भी अंधकार की तरह मँडरा रहा है। चरित्रहीन नेता राष्ट्र को फतवा दे रहे हैं कि समाज की मानसिकता में परिवर्तन होना चाहिए, पर दूरदर्शन के विभिन्न बाजारोन्मुख चैनल और मोबाईल, इंटरनेट, ब्लाग, फेसबुक, चेटिंग, विडियो कॉलिंग और विडियो गेम खेलने में ये सारी पीढ़ी व्यस्त हो गई हैं। आज देश के सांस्कृतिक मूल्य संकट में है।

हर कस्बाई शहर तक में बच्चों के पार्क बर्बाद हो गये हैं। गलियों में स्कूल खुल गये हैं, जहाँ खेलने की कोई व्यवस्था ही नहीं है। सारे देश में शिक्षा कमोडिटी के रूप में बिक रही है। बचपन को सँवारने की किसको चिंता है। मैं 20वीं सदी को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने बचपन के एक–एक क्षण को रसमय बनाने में अपने जीवन को होम दिया था। मन गुनगुना रहा है–'कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन।'

पथिक

डॉ. अनुराधा चंदेल 'ओस'
मोहनपुर भवरख, मीरजापुर
उत्तरप्रदेश, 09451185136

तेरा स्वप्न में आना पथिक
चले जाना
मुझे स्तब्ध कर देता है
तेरी चंचल चितवन पथिक
उमंग संग लिए जाना
मुझे विस्मृत कर देता है
तेरी नशीली मुस्कान का
अधरों पे आना–जाना
मुझे अवाक् कर देता है
मुझे पता नहीं तुम क्यों
ऐसा करते हो
प्रीत सच में करते हो या
प्रीत का दम भरते हो?

स्वर्ग की शापित अप्सरा

स्वर्ग की शापित अप्सरा सी
नेह के अनुबंध सी
स्नेह के कुछ छंद सी
अकिंचन अंतर्मन की पीड़ा को
मूंदे हुए, नदी के
स्वच्छ जल की तरंगों सी
लहरों के उठापटक में
स्वयं को ढूढ़ती सी
बहुत दूर निकल आई।

बूँदों का संदेश

टप–टप टप–टप
गिरती बूँदों ने कुछ कहा
तुमने सुना शायद
मिलन का संदेश
प्यास से मरती नदी को
तृप्त करने का संदेश
सूखी पथरायी धरती से
मिलन का संदेश
किसानों की मायूसी को
हँसी देने का संदेश
बीजों को अंकुरित हो
हरियाली देने का संदेश
प्रिय की याद दिलाने को
मेघदूत बन 'ओस' को संदेश

आलेख

मानव मूल्य और साहित्य

डॉ. हीरालाल बाछोतिया
साकेत, नई दिल्ली

दार्शनिक संदर्भ में 'मूल्य' शब्द कीमत का पर्यायवाची है। अर्थशास्त्र में यह बाजार दर का प्रतिमान है। मानविकी संदर्भ में इसे 'शिवत्व' का स्थान दे सकते हैं। इस पर शास्त्रों में पर्याप्त विचार हुआ है। सर्व सम्मत मूल्य निर्धारण कठिन है, तथापि सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, दया जैसे नैतिक मूल्य देश–काल से परे हैं। इन्हें सनातन मूल्य कहना भी असंगत होगा। मिल जोन्स जैसे नीतिशास्त्रियों ने उपयोगितावादी दृष्टिकोण से 'अधिक का हित' को सदसत् की कसौटी माना है। कांट जैसे दार्शनिक मानव को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं और 'मानव को अपने आप में साध्य' मानते हैं। हमारे धार्मिक ग्रंथों में यही मान्यता है–'न हि मनुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्'। महाभारत का यह कथन मानव की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है। बुद्ध, महावीर, नानक, गाँधी आदि मानव कल्याण को ही सदसत् की कसौटी माना है।

भारत की अपनी प्राचीन परंपरा है। इस परंपरा का निर्माण अनेक विश्वासों और धर्मों के सम्मिश्रण का प्रतिफल है। ये आदर्श, मान्यताएँ एवं आस्थाएँ हमारे सांस्कृतिक मूल्यों से निरंतर पोषित एवं नियंत्रित होती रही हैं। किंतु आज हमारे सांस्कृतिक मूल्य धूमिल हो रहे हैं। इस कारण नैतिक और सामाजिक मूल्य विघटित हो रहे हैं। आज नैतिक असमंजस, अनास्था और अव्यवस्था का वातावरण सर्वत्र व्याप्त है। ऐसी स्थिति में भावी पीढ़ी में मूल्यों के संरक्षण की भावना कैसे पैदा करें?

मूल्यों के विघटन का प्रमुख कारण तर्क की प्रधानता तथा विश्वास एवं आस्था की कमी भी है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी क्रांति ने मनुष्य के भौतिक उपादानों और साधनों को बदल दिया है। इतना ही नहीं, उनकी मानसिक प्रवृत्तियाँ भी बदल गई हैं। प्राचीन मूल्यों के प्रति उसकी आस्था हिल गई है। वह बुद्धि, तर्क एवं भौतिक उपयोगिता को ही प्रमाण मानने लगा है। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन का प्रत्येक क्षेत्र संदेहों से घिर गया है। साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। यदि समाज में अनास्था, टूटन, अविश्वास है तो साहित्य के आईने में यही तो प्रतिबिंबित होगा।

जीवन मूल्य नैतिक, सामाजिक अथवा आध्यात्मिक 'बहुजनहित' अथवा 'सर्वजनहित' ही उसकी मूल भावभूमि होती है। अतः व्यक्तिगत कुण्ठा, संत्रास, तर्क, भय, पीड़ा, द्वन्द्व, अनास्था आदि जो साहित्य और विशेष रूप से नई कविता में परिलक्षित होते हैं–इन्हें हम किसी जीवन मूल्य की श्रेणी में नहीं रख सकते थे। ये विज्ञान द्वारा प्रदत्त निषेधात्मक (निगेटिव) मूल्य हैं। ये तो मूल्यों के विघटन से उत्पन्न विकृतियाँ मात्र हैं। 'नई कविता' के पास ऐसी ही अनेक विक्षुब्ध मनःस्थितियाँ हैं, जिन्हें आलोचक आधुनिक कविता अथवा वैज्ञानिक बोध की संज्ञा प्रदान करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि ये विविध बोध वैज्ञानिक–मनोवैज्ञानिक हो सकते हैं, किन्तु मूल्य संप्रेषक अथवा मूल्यों को आत्मसात करने में सहायक नहीं हो सकते। ये बोध हमारी 'व्यवस्था' की 'अव्यवस्था' को उद्घाटित अवश्य करते हैं। उस व्यवस्था विशेष के विरुद्ध नफरत और घृणा बढ़ाने में भी ये सफल होते हैं, किन्तु उसके आगे नहीं बढ़ते। कहा जाता है कि कवि कलाकार होता है, वह समाज सुधारक नहीं। यदि कबीर और तुलसी की भी समझ ऐसी ही होती, तो आज उनका काव्य कदापि अमर न होता।

शास्त्रीय भाषा में कहा जाए तो हमें कला को कला के लिए नहीं, अपितु कला को जीवन के लिए, जीवन मूल्यों के संप्रेषण के लिए एवं उन्हें आत्मसात करने के लिए अपनाना होगा। आज समाज में वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, नेता, दार्शनिक, लेखक, कलाकार आदि सभी यह कह सकते हैं कि 'समाज–सुधार' उनका पेशा नहीं, तो आखिर समाज–सुधारक हैं कौन?भाषा की सीमाओं के कारण जिन व्यक्तियों को 'समाज–सेवक' या 'समाज– सेविका' कहा जाता है, उनके बौद्धिक स्तर, व्यक्तिगत सामर्थ्य एवं उनके द्वारा की जा रही समाज–सेवा से हम सुपरिचित हैं। क्या समाज–सुधार का कार्य हम इन पर छोड़ दें?या उन तथाकथित भगवान् कहलानेवाले संन्यासियों पर जो विलासिता में आकंठ डूबे रहकर वास्तविक समाज से दूर रहते हैं। नहीं, यह एक सामूहिक उत्तरदायित्व है और उसमें कवि, कथाकार और समालोचक भी शामिल हैं।

आजकल प्रकृतिवाद, यथार्थवाद, फ्रायडवाद आदि की मान्यताओं को आधुनिक मानकर जो साहित्य रचा जा रहा है, उसके प्रति 'कला जीवन के लिए' के सिद्धांत के हिमायतियों की चिंता स्वाभाविक है। गोष्ठियों में प्रायः ऐसे साहित्य की उपादेयता पर बहस होती रहती है। एक दल, जो ऐसे साहित्य का समर्थक है, दलील देता है कि साहित्य एक प्रकार की कला है, जिसमें सराहना केन्द्र बिन्दु है और वह कला, कला के लिए है। सामाजिक दृष्टि से उसकी उपादेयता बाई प्रोडक्ट की तरह है। उसकी मान्यता है कि काव्य एक ललित कला है, जिसमें देखने एवं सराहने की बात है–जो चीज है, उसका अंकन कितना उत्कृष्ट है।

आज साहित्यकार के मान्य मूल्यों एवं व्यावहारिक मूल्यों का अंतराल क्रमशः बढ़ रहा है। यही कारण है कि वह जनमानस की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पा रहा है। संपृक्त हुए बिना किसी विषय पर लिखना बुद्धिविलास हो सकता है, साहित्य नहीं। मानवतावादी आलोचकों ने साहित्य की संज्ञा उसे दी है, जो 'सहित' हो अर्थात् हित से युक्त हो। यह भाव ही साहित्य है–'सहितस्य भावं साहित्यम्'। तुलसीदास ने यही बात जोर देकर कही है–'कीरति भणिति भूल भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित जोई।।'

बहुजनहित या सर्वजनहित से बढ़कर कोई अन्य धर्म नहीं और परपीड़ा से बढ़कर कोई पाप नहीं। इस बात को गोस्वामी तुलसीदासजी ने सर्वोपरि माना है–'परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।।'

इसी बात को व्यास ने महाभारत में इस प्रकार कहा है–'सावधान होकर धर्म का वास्तविक रहस्य सुनो और उसे सुनकर उसी प्रकार आचरण करो। जो कुछ तुम अपने लिए हानिप्रद और दुःखदायी समझते हो, वह दूसरों के साथ मत करो।' यही बात बुद्ध, महावीर, कन्फ्यूशियस, ईसा मसीह, मुहम्मद पैगम्बर, नानक आदि सभी ने अपने–अपने ढंग से कही है।

आज का साहित्यकार धन, प्रभुता एवं वैभव की चकाचौंध में जीवन–मूल्यों को अपेक्षित महत्त्व नहीं दे रहा है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रभुता और धन की तुलना में और भी मूल्य होते हैं, जो जीवन को अधिक जीने योग्य बनाते हैं और जो धरोहर रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलते हैं। अतः साहित्य का मूल्यांकन जीवन–मूल्यों की दृष्टि से होना चाहिए। सांस्कृतिक संदर्भ में जीवन–मूल्यों की दृष्टि से साहित्य के मूल्यांकन

का कार्य विशिष्ट महत्त्व का है। शोधकर्ताओं के लिए यह क्षेत्र बड़ा ही उर्वर साबित हो सकता है।

हर युग में रचनाकार एक नैतिक दायित्व से बँधा होता है। जीवन–मूल्यों के ह्रास एवं विघटन से संत्रस्त इस वर्तमान में रचनाकार का यह दायित्व होना चाहिए कि वह पाठकों में जीवन– मूल्यों के प्रति एक सात्विक आस्था जगाए, ताकि पाठक अनास्था के कुहासे से निकलकर नवीन प्रकाश में अपनी जीवन–शैली का निर्माण कर सकें। इस संबंध में डॉ0 राधाकृष्णन ने बड़ी सटीक बात कही है। जीवन–मूल्य और साहित्य के विवेचन के संदर्भ में उनके मन्तव्य को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। वे कहते हैं–'जो लाखों लाख मनुष्य धार्मिक दृष्टि से विस्थापित हो गए हैं और शरणार्थी की भाँति कला, विज्ञान, फासिस्टवाद, नाजीवाद और मानवतावाद एवं साम्यवाद के अस्थायी शिविरों में आश्रय खोज रहे हैं, उनके भीतर आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था जगाना मेरा प्रिय कार्य रहा है। रोगमुक्ति का प्रथम सोपान विचारों की उस विशृंखलता को ठीक से समझना है, जिसमें करोड़ों मानव फँसे हुए हैं। शंका और नास्तिकता की प्रवृत्ति को सबसे बड़ी उत्तेजना वैज्ञानिक दृष्टिकोण की वृद्धि से मिली है। मनुष्य की सामाजिक चेतना जागृत हो गई है और वह बाह्याचारों से ग्रसित धर्म का विरोध कर रही है।'

आज साहित्यकार के दायित्व को लेकर अनेक प्रश्न हमारे सामने उभरते हैं। सच्चे साहित्यकार की कसौटी क्या है?क्या वह स्थायी मानव–मूल्यों के प्रति ईमानदार है?क्या वह मूल्यों के प्रति जागरुक है?इन प्रश्नों को दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। इन प्रश्नों के उत्तर खोजना एवं तदनुसार सत्साहित्य के सृजन हेतु प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना एक सामूहिक दायित्व है। एक सच्चे साहित्यकार का दायित्व इसी में निहित है कि वह जीवन के संस्कृत–असंस्कृत मूल्यों में से मानव के उत्थान में सहायक मूल्यों का चुनाव करें तथा जीवन के स्थायी मूल्यों की ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियों के आधार पर साहित्य की सर्जना करे। साहित्यकार के लिए सही एवं संस्कृत जीवन–मूल्यों का चुनाव ठीक हो जाने पर ही उस मार्ग पर चला जा सकता है। परंपरा से हटकर चलना सरल नहीं होता, उसमें कठिनाइयाँ तो आती हैं। उन कठिनाइयों का सामना करने के लिए हममें नैतिक साहस एवं आत्मबल होना चाहिए। महाकवि निराला ने जब छंदहीन कविता का प्रयोग हिन्दी में किया, तो उन्हें भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसका पूर्वाभास निराला को हो चुका था। इसलिए कविता–कामिनी को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था–गजगामिनी पथ तेरा संकीर्ण–कंटकाकीर्ण

कैसे होगी इससे पार।
काँटों में तेरे तार उलझ जाएँगे
और उलझ जाएगी हार।

किन्तु कालांतर में पथ प्रशस्त होता गया और उनके साथ छंदरहित कविता का पूरा कारवाँ ही चल पड़ा। लोग मिलते रहे कारवाँ चलता रहा। यही बात मूल्यों के निर्णय के संबंध में प्रकारान्तर से क्रियान्वित की जा सकती है। साहित्यकार का एक महान दायित्व है, पाठकों को स्थायी मूल्यों की ओर प्रवृत्ति करना। आज कथनी और करनी की खाई समाज के विभिन्न क्षेत्रों में गहरी होती जा रही है। साहित्य–सृजन को इसका अपवाद नहीं कहा जा सकता। अतः इस खाई को पाटने का प्रयास करना होगा। इस प्रयास में साहित्यकार का महनीय योगदान हो सकता है। ऐसा करने में उसका अपना हित भी समाहित है। जीवन के स्थायी एवं संस्कृत मूल्यों की ओर अग्रसर होने से उसकी अपनी अस्मिता को भी पाथेय प्राप्त होगा और वह क्रमशः अधिकाधिक ओज एवं वर्चस्व प्राप्त करेगी। अतः अपना मार्ग चुनने के लिए लेखक को अपनी अंतश्चेतना के प्रति पूर्ण ईमानदार होना होगा। उसे अपने विवेक का प्रयोग निष्ठापूर्वक करना होगा।

आज जीवन पूर्णता में देखने की आवश्यकता है। बिना साधना के साहित्यकार को भी यह दृष्टि प्राप्त नहीं होती। इसलिए साहित्यकार के लिए साधना बहुत आवश्यक है। तभी वह जीवन को समग्र रूप में देखकर उसकी समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकता है। जीवन एवं उसकी समस्याओं के प्रति समग्र सरोकार को ही पश्चिम में 'धर्म' की संज्ञा दी गई है। इस अंतरिक्ष युग में विज्ञान के कदम अत्यंत तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी हमें नये मानव–मूल्यों की स्थापना करनी होगी, लेकिन अपनी सांस्कृतिक विरासत को देखकर ऐसा कुछ भी कहना भावी पीढ़ी के लिए भयावह होगा। इसलिए एक आवश्यकता यह भी है कि हम भारतीय साहित्य के मर्म के शाश्वत सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या करें। हमारे मानवीय संबंध नैतिक–सामाजिक मूल्य मानवतावाद पर आधारित रहे हैं। हमारे साहित्य में उदात्त तत्त्वों की प्रधानता रही है। हमें इस उदात्तता को बनाए रखना है, जबकि आज स्थिति यह है कि हम स्वर्णिम मूल्यों को ध्वस्त कर चुके हैं, किन्तु नए मूल्यों का निर्माण नहीं कर सके।

आँखें मूँदकर हम पश्चिम की नकल करने में प्राणपन से जुटे हुए हैं, पर पश्चिम के मूल्यों की अच्छाइयों को ग्रहण न कर हम उसकी बुराइयों को जरूर गले लगा रहे हैं। हमने जर्मन जाति का जुझारूपन, सत्यनिष्ठा, संगठन, राष्ट्रप्रेम को कहाँ अपनाया। जिन अंग्रेजों की नकल कर हम आधुनिक कहलाने का ढिंढोरा पीटते रहे, उनके मूल्य, उदारता, ईमानदारी, स्वच्छता, सफाई का भी क्या हम नाममात्र के लिए अनुसरण कर सके हैं?

हमें अपनी क्षमता को पहचानना है और समाज व देश के प्रति अपने कर्तव्य पालन में अपने आपको समर्पित करना है। कहा गया है– उपदेश से उदाहरण श्रेष्ठ है। 'इक्जांपल इज बैटर दैन प्रीसेप्ट। यदि हम अपने आचरण में परिवर्तन लाना चाहते हैं, कुरीतियों को दूर करना चाहते हैं, देश को सही दिशा देना चाहते हैं, तो शिक्षा और साहित्य में इसे सर्वोच्च स्थान देना होगा। मूल्यों की पुनर्स्थापन का कार्य तो कठिन है, पर असंभव नहीं। यद्यपि मूल्य शाश्वत नहीं है, किन्तु देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उन्हें अपनाने में कठोरता का पालन न कर समयानुसार मध्यम मार्ग अपनाना भी श्रेयस्कर हो सकता है। अरस्तु ने सद्गुण को मध्यम मार्ग चुनना एक आदत माना है। अतः हमें भी मध्यम मार्ग का चुनाव करना होगा। चुनाव करने की आदत ही सद्गुण कहलाती है। सद्गुणी व्यक्ति वह नहीं, जो कायर है और न वह जो अति साहस का अनुसरण कर खतरों को निमंत्रण देता है, वरन् सद्गुणी व्यक्ति वह है, जो कठिनाइयों से घबराता नहीं, वरन् उससे मुकाबला करने का साहस दिखाता है। उसमें नैतिक साहस होता है। न वह अपव्ययी होता है, न कंजूस, वरन् वह मितव्ययी होता है। यही सद्गुण है, यही मध्यम मार्ग है। इसका विकास ही मूल्यों की स्थापना का सही आधार हो सकता है। जब बिम्ब साफ होगा, तो साहित्य के आईने में प्रतिबिम्ब भी साफ झलकेगा।

आलेख

बंगाल विभाजन-1905
नवराष्ट्र और सशस्त्र आंदोलन

डॉ. ऊषा निगम
कैंट, कानपुर
9792733777

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में पुनर्जागरण की लहर में पूरे देश में नई सोच, नए विचारों और नव चेतना का संचार किया। सोच में परिवर्तन हुआ तो समाज में बदलाव आया और फिर राजनीतिक जागृति के युग का आरंभ हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहन राय, महादेव गोविन्द राणाडे जैसे समाज सुधारकों, विवेकानंद जैसे चिंतकों, बंकिमचन्द्र जैसे साहित्यकारों और प्रभाकर, पेट्रियॉट, इंडियन मिरर, हिन्दू, बाम्बे समाचार आदि समाचार पत्रों एवं अंग्रेजी शिक्षा ने देश में एक नए वातावरण का सृजन किया। दूसरी ओर अनेक अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियों से (यथा दक्षिण अफ्रीका में बोअर युद्ध में अंग्रेजों की पराजय तथा जापान की रूस पर विजय) पाश्चात्य देशों की अपराजेय शक्ति का भ्रम दूर हुआ।

अंग्रेजी राज्य की नीतियों से उत्पन्न आर्थिक दुर्व्यवस्था की पीड़ा पूरा देश भुगत रहा था। निरंतर अकाल और महामारियों का भी प्रकोप रहा। अंग्रेजी राज्य के अत्याचार और दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप कभी वासुदेव बलवंत फड़के, कभी चाफेकर बंधुओं का बलिदान सामने आया तो कभी महाराष्ट्र और बंगाल में गुप्त समितियाँ अथवा व्यायाम समितियाँ बनाकर सशस्त्र विरोध का आरंभ करने की चेष्टा की। लेकिन भारत के राजनीतिक पटल को किसी ऐसी घटना की प्रतीक्षा थी, जो सारे देश में एक साथ राजनीतिक जागरण पैदा कर दे। बंगाल विभाजन, जिसे संक्षेप में बंग–भंग कहा गया, ऐसी ही एक घटना थी।

भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के साथ बंगाल प्रांत का आकार बढ़ता चला गया। उसमें बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर के भी कुछ प्रदेश शामिल हो गए थे। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से काफी समय से बंगाल प्रांत के विभाजन पर विचार किया जा रहा था। इसी विचार को वायसराय लॉर्ड कर्जन ने 16 अक्टूबर, 1905 को मूर्त रूप प्रदान किया। इस विभाजन के पीछे हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्यता को बढ़ावा देना भी एक बहुत बड़ा कारण था।

बंगाल की जागरुक जनता ने आरंभ से ही बंगाल के विभाजन का विरोध किया था और जब यह स्पष्ट हो गया कि बंग भंग अवश्यंभावी है, तब बंगालवासियों ने विभाजन का घोर विरोध किया। बंगाल के विभिन्न हिस्सों में दो हजार से अधिक सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया। इन सभाओं में हजारों लोगों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। छात्रवर्ग भी स्वयं को इससे पृथक् नहीं रख सका। आरंभ में हिन्दू और मुसलमानों ने एक साथ मिलकर विभाजन का विरोध किया था, लेकिन कर्जन ढाका के नवाब समीमुल्ला का समर्थन पाने में सफल हुआ। परिणामस्वरूप हिन्दू–मुस्लिम एकता की सुदृढ़ दीवार कमजोर पड़ गई, जिसने इस संघर्ष को कमजोर अवश्य किया, किंतु संघर्ष आगे भी चलता रहा।

7 अगस्त, 1905 को कलकत्ता के टाउन हॉल में जनता और छात्रों के सहयोग से विशाल सभा का आयोजन हुआ, जिसमें विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का प्रस्ताव पारित किया गया। वंदे मातरम् के नारे ने युद्धघोष का स्वरूप ग्रहण कर लिया। छात्रों ने स्कूल, कॉलेजों का बहिष्कार किया। समाज के अनेक वर्गों ने भी बहिष्कार नीति का अनुसरण किया। कालीघाट तथा फरीदपुर के धोबियों ने अंग्रेजों के कपड़े धोने का बहिष्कार किया, मेमन सिंह और फरीदपुर के चमारों ने अंग्रेजों के जूते बनाने से इनकार किया। विदेशी वस्तुओं की दुकानों पर धरने दिए गए। विदेशी वस्तुओं को खरीदने से रोका गया।

बंगाल का संपूर्ण प्रेस इस आंदोलन के साथ था। अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार का विचार ही सर्वप्रथम कलकत्ता के साप्ताहिक 'संजीवनी' ने अपने 13 जुलाई, 1905 के अंक में दिया था। 19 जुलाई, 1905 को 'बारिसल हितैषी' पत्र ने लिखा–'क्या बंगाली विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने में चीनवासियों का अनुकरण करेंगे? यदि वे कर सकें, तो उनके सामने स्पष्ट मार्ग है।' सितम्बर 14 को 'द ट्रिब्यून' ने लिखा–'बंगाल विभाजन ने सरकार को एक ऐसी अजीब, अतुलनीय और ईर्ष्यालु स्थिति में ला दिया है कि इस भव्य विच्छेद के आनंद का सहगामी एक भी मित्र नहीं रह गया (अर्थात् अंग्रेजी सरकार के सभी शत्रु हो गये)।'

11 सितम्बर, 1905 को बिहारी पत्र ने गीता को उद्धृत करते हुए कहा कि 'यदि तुम युद्धभूमि में मृत्यु को प्राप्त हुए तो स्वर्ग का द्वार तुम्हारे लिए खुला है, यदि तुम विजयी हुए तो तुम इस संसार का आनंद उठाओगे।' सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में–'बंगाल के शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग में स्वयं को अपमानित, दमित और ठगा हुआ महसूस किया।' बंगाल की चारों ओर दिशाओं में असंतोष ही असंतोष था। केवल एक चिनगारी की आवश्यकता थी।

आज भी इस बात की कल्पना की जा सकती है कि जिस घटना के विचार मात्र ने पूरे बंगाल को उद्वेलित कर दिया था, उसकी घोषणा के बाद क्या हुआ होगा। छात्रों के रूप में युवा शक्ति का साथ पाकर बंग–भंग आंदोलन को नवीन ऊर्जा प्राप्त हुई और आंदोलन की ताकत कई गुना अधिक बढ़ गई। एक ऐसे सरकार विरोधी वातावरण का सृजन हुआ, जिसे इतिहास ने पहले नहीं देखा था। तभी आनंद मोहन बोस ने कहा कि 'यहीं से एक नवीन राष्ट्रीय चेतना की नींव पड़ी और अप्रत्यक्ष रूप से लॉर्ड कर्जन ने बंग–दंभ द्वारा इस देश पर महान उपकार किया।' 16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल ने अभूतपूर्व विरोध देखा। कलकत्ता में पूर्ण हड़ताल जैसा दृश्य था। वंदे मातरम् के उद्घोष के साथ विशाल जुलूस निकाले गए। कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के आह्वान पर 16 अक्टूबर राखी बंधन दिवस के रूप में मनाया गया।

बंगाल विभाजन से उत्पन्न विरोध ही स्वदेशी आंदोलन में परिवर्तित हो गया। यह पूरा आंदोलन बंगवासियों तथा अंग्रेजी सरकार के बीच एक अघोषित युद्ध जैसा था। भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन अब राजनीतिक पुनर्जागरण की दिशा की ओर बढ़ चला था। इस आंदोलन के प्रादेशिक स्वरूप में शीघ्र ही राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। सारा देश जो अभी तक दर्शक था, बंगालवासियों का समर्थक हो गया। महाराष्ट्र से बाल गंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, अरविन्द घोष,

पंजाब से लाला लाजपत राय जैसे जुझारु नेताओं के समर्थन ने राष्ट्रीय राजनीतिक जागरुकता को मजबूत नींव प्रदान की, जिस पर आनेवाले वर्षों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम की इमारत खड़ी हुई।

कुछ अपवादों को छोड़कर बंग–भंग आंदोलन पूर्ण रूप से अहिंसक आंदोलन था, जिसका पूरी हिंसा के साथ दमन किया गया। यहाँ तक कि वंदे मातरम् का नारा लगाना भी गैर कानूनी था। नारा लगानेवालों को हर तरह से प्रताड़ित किया जाता था। 19 अप्रैल, 1906 को 'बंगवासी' पत्र में लिखा कि 'वंदे मातरम् राजद्रोह का उद्घोष न होकर देश प्रेम का उद्घोष था। .... यह मातृभूमि के प्रति भक्ति और उपासना का गीत था, न कि युद्ध की पुकार का गीत।'

अंग्रेजी सरकार के दमन चक्र का एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में 14 अप्रैल, 1906 का बारिसल में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन का दमन करने के लिए गोरखा रेजिमेंट के जवानों को तैनात किया था। वंदे मातरम् के हर नारे के साथ लाठियों की मार पड़ती थी। स्वदेशी माल बचेनेवाली दुकानों को तोड़ा गया आदि आदि। वस्तुतः बारिसल सम्मेलन के दमन ने एक ऐसी स्थिति ला खड़ी की, जब देश के एक वर्ग ने यह महसूस किया कि अब अंग्रेजी राज्य का सामना करने के लिए हिंसक मार्ग की आवश्यकता है। यह विचार दृढ़ होता चला गया कि हिंसक दमन का सामना हिंसा द्वारा ही किया जा सकता है कि अहिंसा ही विरोध का एकमात्र मार्ग नहीं है, कि 'जैसे को तैसा' की नीति का अनुसरण किए बगैर अंग्रेजों का सामना नहीं किया जा सकता। सशस्त्र प्रतिरोध की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी।

सशस्त्र आंदोलन की आवश्यकता को तत्कालीन समाचार पत्रों का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। विपीनचन्द्र पाल द्वारा संपादित वंदे मातरम, ब्रह्मबांधव की सन्ध्या तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त द्वारा संपादित युगान्तर अपने क्रान्तिकारी विचारों द्वारा न केवल बंगाल का वरन् पूरे देश का मार्गदर्शन कर रहे थे। 5 मार्च, 1907 को युगान्तर ने पुनः लिखा–'अपने धर्म का विनाश करनेवाले को मार डालो। जो तुम्हारे कर्तव्य और धर्म के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करे, उसे मार डालो, चाहे वह धनी हो या निर्धन, जमींदार, राजा, सरकारी अफसर या स्वयं सम्राट ही क्यों न हो।'

1907 में संध्या ने लिखा–'भाइयो! शस्त्र उठा लो, मुक्ति दिवस निकट है। हमने यह आकाशवाणी सुनी है कि हम अपनी मृत्यु से पूर्व भारत की पराधीनता की बेड़ियाँ टूटते हुए देख सकेंगे। अब पीछे हटना संभव नहीं है, बहुत देर हो चुकी है।' 13 मई, 1907 के अंक में संध्या ने 'बम का दर्शन' के समर्थन में पुनः लिखा कि एक ऐसे बम का निर्माण किया जा रहा है, जिससे आधुनिक युद्ध शैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाएगा। ...बम बहुत सस्ता भी है।.... लेकिन हम शस्त्रों के बारे में चिंतित नहीं हैं। हमें ऐसे भारतपुत्रों के समूह की आवश्यकता है, जो हृदय से निडर होकर यह घोषणा करें कि देश को स्वतंत्रता देखे बिना वे मरना नहीं चाहेंगे और यह भी कि 'लाठी और बम के बिना फिरंगियों को होश नहीं आएगा।'

यही वह समय था जब अरविंद घोष का भारतीय राजनीति में पदार्पण हुआ। तिलक के सान्निध्य में रह चुके अरविंद घोष का विश्वास उग्र राष्ट्रवाद में था। साथ ही वे किसी भी मार्ग का सहारा लेकर भारत को स्वाधीन करने का स्वप्न देख रहे थे। उनके भाई बारीन्द्र कुमार घोष ने अरविंद के मार्गदर्शन में बंगाल को अपनी कर्मभूमि बनाया और सुनियोजित रूप से सशस्त्र क्रान्ति की विचार धारा को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने क्रान्तिकारी साहित्य के माध्यम से सैन्य प्रशिक्षण के महत्व को तथा किन रणनीतियों द्वारा विदेशी सरकार का सामना किया जाए, इन विषयों पर गंभीरता से चर्चा की। विदेशों से अस्त्र–शस्त्र मँगाने, भारतीय सेना से संपर्क करके सैनिकों को क्रान्तिकारियों के निकट लाने पर भी विचार किया गया। बारीन्द्र ने ही बंगाल में बम बनाने के छोटे–छोटे कारखानों की स्थापना की थी। उन्होंने अपने युगान्तर संगठन के माध्यम से अनेक बार अंग्रेजी सरकार के अफसरों को मारने के असफल प्रयत्न किये थे।

बारीन्द्र घोष के 34 मुरारी पुकुर रोड पर बम बनाने के कारखाने की तलाशी ली गई। बारीन्द्र तथा उनके साथी एक के बाद एक पकड़े गये। क्रान्तिकारी आंदोलन के इतिहास में यह केस 'अलीपुर षड़यंत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी संगठन से जुड़े क्रान्तिकारी खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, कन्हाईलाल दत्त तथा सत्येन्द्र नाथ शहीद हुए और सारे देश ने उनकी शहादत पर शोक प्रकट किया। बारीन्द्र को कालापानी का दंड दिया गया।

शनैः शनैः बंगाल की ही अनुशीलन समिति की शाखाएँ पूरे बंगाल में और बाद में उत्तरी भारत के अन्य हिस्सों में भी फैलती चली गई। चूँकि सशस्त्र आंदोलन प्रकाश्य नहीं हो सकता था, इसकी काफी सीमाएँ थीं। अतः वह जन आंदोलन नहीं बन सका। लेकिन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में उसका महत्त्व कम नहीं है। बंग–भंग ने आजादी के दीवानों की एक ऐसी शृंखला तैयार कर दी, जिसने अंग्रेजी सरकार की निश्चिंतता को समाप्त कर दिया। जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नरम और गरम दलों की विचारधाराओं के मध्य उलझी थी, तब यही सिरफिरे दीवाने जान हथेली पर लिये अंग्रेजी सरकार के भीषण अत्याचारों से घबराए बिना देश को आजाद करने का सपना देख रहे थे। वह सपना व्यावहारिक नहीं था, फिर भी प्रसिद्ध इतिहासकार आर.सी. मजूमदार के शब्दों में–'कोई भी उनकी भावनाओं की गंभीरता तथा उनके विश्वास की ईमानदारी पर संदेह नहीं कर सकता।'

बंग–भंग आंदोलन के समय हिंसा का हिंसा से सामना करने के जिस सिद्धांत का खुलकर प्रतिपादन हुआ, वह फिर आगे ही बढ़ता गया, रुका नहीं, ठहरा नहीं। गाँधीजी के नेतृत्व में चलनेवाले अहिंसात्मक आंदोलन के समानान्तर क्रान्तिकारी आंदोलन भी चलता रहा, कभी तीव्र गति से, कभी धीमी गति से– विभिन्न प्रदेशों में, विभिन्न नेतृत्व में। सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिंद फौज का निर्माण करके क्रान्तिकारियों के सपनों को बृहद् रूप दिया। यहाँ तक कि अपने अंतिम चरण में कांग्रेस का आंदोलन भी विशुद्ध अहिंसात्मक आंदोलन नहीं रह गया था।

पुस्तकचर्या

स्त्री मन की खुलती गिरहें

राहुलदेव
सीतापुर (उ0प्र0)
9454112975

समकालीन कविता समय में कई सारे स्त्री–स्वर एक साथ सृजनरत हैं। डॉ0 सोनी पांडेय भी उनमें शामिल हो रही हैं। वह एक सक्रिय युवा कवयित्री और संपादक हैं। 'मन की खुलती गिरहें' उनके पहला कविता संग्रह का नाम है, जिसमें उनकी कुल 61 कविताएँ संगृहीत हैं। संग्रह की पहली कविता से ही कवयित्री अपने पक्ष को स्पष्ट कर देती हैं। चार भागों में लिखित 'बदनाम औरतें' शीर्षक कविता अपने तेवरों में खास है। बदनाम औरतों का सच बयां करते हुए वह लिखती है–

कैसी होती हैं ये औरतें
क्या ये किसी विशेष प्रक्रिया में रची जाती हैं
क्या इनका कुल–गोत्र भिन्न होता है
क्या ये प्रसव वेदना के बिना आती हैं
या मनुष्य होती ही नहीं?

इस कविता के दूसरे भाग में वह स्पष्ट करती है कि–

बेटियाँ कभी बदनाम होती ही नहीं
बेटे ही बनाते हैं इन्हें बदनाम औरतें।

कविता के तीसरे भाग में कवयित्री अपने स्वानुभूत अनुभव के माध्यम से विषय को खोलकर हमारे सामने रख देती हैं और अंत में वह बदनाम होने के लिए सिर्फ और सिर्फ दृष्टि को उत्तरदायी ठहराती है।

अगली कविता 'तीसरी बेटी का हलफनामा' भी एक लंबी कविता है। इस कविता का अंतिम भाग सबसे सशक्त है। उम्र के चालीसवें पायदान पर बैठकर जब कोई संवेदनशील स्त्री अपने जीवन के मध्य का इतिहास लिखती है, तब 'उम्र के चालीसवें पायदान पर' जैसी कविताएँ लिखी जाती हैं। इस चालीस साल इतिहास को इतिहास के कई कवयित्रियों ने अपने–अपने तरीके से देखने की कोशिश की है। अगली कविता 'चौराहा' भी थोड़ी लंबी है। इसे मैं एक औसत कविता कहूँगा। अपने कथ्य के वनिस्पत कई कविताएँ थोड़ा ज्यादा फैलाव का शिकार हो गयी हैं, ऐसा लगने लगता है। इसी तरह की कविताएँ 'मृत्यु' और 'रात' भर होते हैं कतारबद्ध लोग' भी हैं। कविता में शब्द व्यय अधिक होने से भाव संदर्भ कम होने का अंदेशा बना रहता है। इस लिहाज से 'चौराहे पर स्त्री विमर्श' और 'औरत' शीर्षक कविताएँ ज्यादा बेहतर कविताएँ हैं। स्त्री विमर्श में रिड्यूस करने की साजिश को लेकर पूछती भी हैं–

औरत
तुम कब तक लिखी जाओगी जिस्म?

तो वहीं पुरुष सत्ता के छल को उसके पौरुष की हार बताते हुए उसके असली चेहरे को पहचाने जाने की बात उठाती है 'छल' शीर्षक एक छोटी–सी कविता। स्त्री मन के कोने–कोने तक इनकी कविता जाती है। वह शोषण की नहीं, प्रेम की आकांक्षी है। इसी अतिशयता में अपनी 'दुधारू गाय' शीर्षक कविता में वह कह उठती है–

मैं भी पुरुष मुक्ति कामना का
प्रतीक बन
टांक दी गयी हूँ
खजुराहो के शिल्प में
सुबह के आधी रात तक
मैं केवल एक मशीन हूँ
काश पड़ोसी की गैराज में खड़ी
सुन्दर गाड़ी होती
या आलमारी में सजा टेडी होती।

इनके यहाँ शताब्दियों की पीड़ा आक्रोश का रूप धरकर पाठक को आंदोलित करती है और व्यापक स्त्री विमर्श करती हुई कविता के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करती है। उसकी अभिव्यक्ति की यह तो महज एक शुरुआत है, हो सकता है इस लड़ाई में उसके औजार अभी उतने पैने नहीं हैं, लेकिन जिस तरह वह तमाम वर्जनाओं को तहस–नहस करते हुए आगे बढ़ती है, वह निश्चित रूप से नयी उम्मीदें जगाती है।

क्या जीवन में 'रोटी' का होना ही सब कुछ है?इस प्रश्न को कभी अर्थपूर्ण तो कभी अर्थहीन लगते हुए संवाद स्थापित करने की कोशिश के द्वन्द्वमें कविता आती है और लगता है कि 'अभी शेष है' ऐसी कविता लिख पाना जिसमें जीवन और मृत्यु की तमाम पहेलियों के हल मिल सकें। जीवन की कही–अनकही 'अकथ' कहानी के उजले और स्याह दोनों पन्नों को देखते हुए 'ये जो पर्दा है शीर्षक कविता में उसका साहस के साथ पूछना बहुत सारे प्रश्न पीछे छोड़ जाता है कि–

तुम क्यों नहीं रखते
कल्याण कामना के लिए
असंख्य निर्जला व्रत?
क्या ये सारे ठेके औरत के हिस्से हैं?

संग्रह में कुछ छोटी–छोटी, लेकिन सशक्त कविताएँ भी हैं। जैसे 'एक खुला पत्र माँ के नाम' शीर्षक कविता। इनकी कविता में 'अम्मा' बार–बार आती है; उनकी स्मृतियाँ और संघर्ष कवयित्री को स्त्री के भावी रूप और जीवन के पन्नों की इबारत लिखने में प्रेरक बनते हैं। 'माँ और चाँद' भी ऐसी ही एक मार्मिक कविता है। 'समर्पित स्त्री की व्यथा' एक पारिवारिक स्त्री की कहानी–सी कविता है, जिसमें 11 छोटे–छोटे भाग हैं। इसकी 10वीं कविता मुझे सबसे अच्छी और प्रभावी लगी। कुछेक शब्दों के हेर– फेर के साथ बिल्कुल उसी कविता की पुनरावृत्ति भी संग्रह में देखने को मिली, जिसे (देखें पृष्ठ 54 और पृ0 68) अच्छा नहीं माना जाता। अन्य छोटी लेकिन उल्लेखनीय कविताओं में–'सीमा रेखा', 'प्रेम', 'मौन', 'नए मूल्य', 'आशा' और 'हँसती हुई लड़कियाँ' जैसी कविताओं को रखा जा सकता है। श्रम सौंदर्य की कुछ बेहतरीन पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

खुली हुई धूप की तरह
खिलखिलाकर हँसती हुई लड़कियाँ
अब खेतों में रोपते हुए धान
सिर पर लादे हुए बोझ
निपटाकर घर का पूरा काम
निकाल ही लेती हैं समय
हँसने के लिए
चुरा ही लेती हैं कुछ पल अपने लिए

भावातिरेक में कुछेक कविताएँ असंगत कथनों का भी शिकार हो गयी हैं, जैसे कि 'पिता' शीर्षक कविता तो कुछ कविताएँ इसके साथ बेहद सपाट हो गयी हैं, जैसे 'तर्जनी की नोक' और 'हाँ मैं एक प्रश्नचिह्न हूँ' शीर्षक कविताएँ। फिर भी अपने ईमानदार कथ्य के कारण यह कविताएँ पाठक का ध्यान आकृष्ट करने में सफल सिद्ध होती हैं।

इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए कवयित्री की प्रखर विचार दृष्टि और भाव सम्पन्नता का पर्याप्त परिचय मिल जाता है। कवयित्री के पास सधी हुई अच्छी भाषा और शिल्प है। संग्रह की अधिकांश कविताएँ स्त्री मन की कसक को लिए हुए समाज को प्रश्नांकित करती हैं, जहाँ प्रेम, ममता और मानवता का सुन्दर संसार बनाये जाने की परिकल्पना मूर्त होती दिखाई पड़ती हैं। कुल मिलाकर वह एक विचारणीय और उल्लेखनीय कविता संग्रह है।

आलेख

सामाजिक न्याय की अवधारणा और डॉ. भीमराव अम्बेडकर का चिंतन

पंकज शुक्ला
दिल्ली, 9868020812

भारत सरकार ने वर्ष 2016 को डॉ. भीम राव अम्बेडकर की 125वीं जयन्ती वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। हमें इस अवसर पर उनकी सामाजिक न्याय की अवधारणा को जानना अति आवश्यक है। डॉ. अम्बेडकर आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक हैं। वे बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विधिवेत्ता, सर्वश्रेष्ठ चिंतक, दूरदर्शी विचारक, ओजस्वी लेखक, समाज–सुधारक तथा भारतीय संविधान के निर्माता थे। उन्होंने समाज सुधार के अंतर्गत अस्पृश्यता के विरुद्ध तथा दलितों के उत्थान का महान कार्य किया, इसलिए उन्हें दलितों का मसीहा भी कहा जाता है। संविधान निर्माण में उनके योगदान को देखते हुए कुछ लोगों ने उन्हें 'आधुनिक मनु' की उपाधि प्रदान की है। उन्होंने समाज के वंचित वर्गों के उत्थान के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

डॉ. अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, सन् 1897 ई0 को महाराष्ट्र राज्य के महू छावनी नामक स्थान पर एक अस्पृश्य समझी जानेवाली महार जाति के परिवार में हुआ था। उन्होंने अपने जन्म के साथ ही अस्पृश्यता तथा छुआछूत की पीड़ा का अनुभव किया। उन्हें जातीय कारणों से प्रत्येक मोड़ पर भारी अपमान तथा यंत्रणाओं की स्थिति का सामना करना पड़ा। भारत में पढ़ाई करने के बाद वे उच्च शिक्षा प्राप्त हेतु विदेश गए, किन्तु विदेशी शिक्षा अर्जित करने के उपरांत भी उन्हें समाज के इस उपेक्षित व्यवहार को सहना पड़ा। फिर भी इस उपेक्षित व्यवहार से विचलित न होते हुए अपने लिए ही नहीं, वरन् संपूर्ण दलित और पीड़ित समाज को सम्मान दिलाने के लिए आजीवन संघर्ष करते रहे।

डॉ. अम्बेडकर कठिन परिश्रम और संघर्ष के बल पर प्रगति पथ पर अग्रसर हुए थे, परन्तु वे कटु सत्य से अवगत थे कि जबतक वे अछूत समझे जाएँगे, तबतक समाज में उन्हें उचित स्थान नहीं मिलेगा। वैसे तो सामाजिक स्तर पर छुआछूत की समस्या को लेकर आधुनिक युग में राजाराम मोहन राय से लेकर महात्मा गाँधी तक अनेक विचारकों और समाज सुधारकों ने संघर्ष किया, परन्तु डॉ. अम्बेडकर का संघर्ष सबसे अधिक प्रभावी और बुनियादी था। जहाँ अन्य विचारकों ने अछूत समस्या को मानवीय, सामाजिक और राष्ट्रीय आधार पर हल करने का प्रयास किया, वहीं डॉ. अम्बेडकर के लिए यह समस्या अधिक गहरी और तीखी थी; क्योंकि वे इस पीड़ा के स्वयं भुक्तभोगी थे। उन्होंने इस बात का स्वयं अनुभव किया था कि भारतीय सामाजिक संरचना में इतनी विकृतियाँ हैं कि शिक्षा व ज्ञान आदि के होते हुए भी केवल अछूत परिवार में जन्म लेने के कारण एक व्यक्ति का समाज में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है और वह पूर्णतः उपेक्षित है। अतः डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के उद्धार और उनमें आत्म–सम्मान के भाव विकसित करने का अथक प्रयत्न किया।

डॉ. अम्बेडकर देश के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास के गहन अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दू धर्म के चतुर्वर्ण से उपजी अस्पृश्यता ही दलित वर्ग के पिछड़ेपन का मूल कारण है। अस्पृश्यता का अंत किए बिना, सामाजिक समानता की स्थापना नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु जाति और वर्ण व्यवस्था पर प्रहार करते हुए बताया कि समाज में कट्टरता का मुख्य कारण जाति और वर्ण व्यवस्था ही है। इस विभाजन ने समाज के अस्पृश्यता का भाव पैदा किया। परिणामस्वरूप समाज में उपेक्षा, शोषण तथा अत्याचार की बहुत बड़ी परंपरा विकसित हुई। उनका कहना था कि प्रारंभ में जातिप्रथा नहीं थी। वैदिक और उत्तर वैदिक काल में जातियाँ जन्म लेने के आधार पर न होकर कर्म पर आधारित थीं। कालान्तर में इसका आधार जातिगत व्यवस्था हो गई, जो शोषण का कारण बनी। जातियों के आधार पर सामाजिक संरचना में असमानता पैदा हुई। इस विभाजन से दलित जातियाँ शिक्षा प्राप्त करने, व्यापार करने, धन–संग्रह तथा हथियार रखने के अधिकार से वंचित हो गईं। इस प्रकार जाति की आड़ में दलितों को अपंग कर दिया गया।

डॉ. अम्बेडकर ने दलितों में जागृति लाने का प्रयास किया। उनका मानना था कि दलितों में जागृति तभी आ सकती है, जब वे शिक्षित होंगे। सामाजिक और राजनीतिक प्रगति के लिए शिक्षा का व्यापक प्रसार अति आवश्यक है और जब तक समाज में, विशेषकर दलितों में अशिक्षा रहेगी, तबतक सामाजिक समानता लाना असंभव है। अतः उन्होंने दलितों को शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित किया।

धर्म पर अपनी राय व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि हिन्दू धर्म में इस रूढ़िवादिता का मूल कारण पुरोहितवाद ही है। अतः इसे समाप्त करना चाहिए तथा हिन्दू धर्म समाज में बुनियादी स्तर पर सुधार करना चाहिए। उन्होंने मनुस्मृति का भी विरोध किया। वे मनुस्मृति को अन्याय की जड़ मानते थे। उनका विचार था कि वर्णाश्रम व्यवस्था में कठोरता लाने का कार्य मनुस्मृति ने ही किया है। इस व्यवस्था के कारण अछूतों का सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक शोषण होता रहा है। इसलिए उन्होंने इन सभी बातों का विरोध करते हुए, दलित समाज के सामने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये, जिनका निम्न जातियों में पैदा होने के बाद भी भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना में योगदान रहा है। इसलिए दलितों को अपने अंदर से हीन भावना को निकाल देना चाहिए तथा समाज में अपना स्थान प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना चाहिए। उनका विचार था कि कोई जाति उच्च या निम्न नहीं होती।

सामाजिक समानता स्थापित करने की दिशा में बाबा साहब ने सबसे पहला प्रयास 1923 ई. में एक आंदोलन चला कर शुरू किया और दलित वर्ग के लोगों के विकास के लिए अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रयत्न किया। उनका विरोध केवल छुआछूत के विरुद्ध ही नहीं था, बल्कि भारतभूमि से जातिवाद और वर्णभेद को मिटाने के लिए भी था। अतः उन्होंने छुआछूत तथा जातिभेद और वर्णभेदों को मिटाने के लिए मैदान में उतरकर लड़ने का फैसला किया और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए 1927 ई. में पहाड़ में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन भी किया।

डॉ. अम्बेडकर ने इस बात पर बल दिया कि मंदिर, तालाब, कुआँ या अन्य कोई सार्वजनिक स्थान का उपयोग केवल जाति के नाम पर निषेध

करना अनुचित है। इन सभी सार्वजनिक स्थानों पर जाने में कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए तथा ये सभी सुविधाएँ अछूतों के लिए भी सुलभ होनी चाहिए। इसके लिए उन्होंने सत्याग्रह किया तथा अपने साथियों से सार्वजनिक तालाब या कुओं का उपयोग जबर्दस्ती करने का आग्रह किया, जिसे 'महत तालाब सत्याग्रह' के नाम से जाना जाता है। इस अभियान में सार्वजनिक तालाब का उपयोग समाज के सभी वर्गों द्वारा किए जाने पर बल दिया। अपने सौ साथियों के साथ उसे तालाब पर जहाँ अछूतों को पानी भरने की इजाजत नहीं थी, जाकर पानी पिया।

डॉ. अम्बेडकर ने जातिगत भेदभाव के साथ धर्म में सुधार का आह्वान किया। उन्होंने दिसम्बर 1927 ई. में हिन्दू संहिता के पुनः निर्माण हेतु नए नियम की माँग की। 1930 ई. में मंदिरों में सवर्णों के एकाधिकार को समाप्त करने के लिए अभियान आरंभ किया तथा नासिक के कालाराम मंदिर में जहाँ अछूतों का प्रवेश तथा पूजा का निषेध था, उस मंदिर में सत्याग्रह करते हुए अपने साथियों के साथ प्रवेश किया। इसमें संघर्ष की अनेक स्थितियाँ भी आईं, किंतु वे अपने लक्ष्य से विमुख नहीं हुए। इसके अलावा उन्होंने महाराष्ट्र में बने 'महार वत्तन कानून' जो महाराष्ट्र की महार जाति के लोगों के लिए बंधुवा मजदूरी और दास्ता की व्यवस्था करता था, का भी विरोध किया। इसके लिए उन्होंने 'समता सैनिक दल' की स्थापना की। इस प्रकार समय के साथ– साथ अस्पृश्यता पर उनका प्रहार बढ़ता गया और आंदोलन तेज होता गया।

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि स्वराज्य के बिना सामाजिक समानता संभव नहीं है और जबतक स्वराज्य की प्राप्ति नहीं होगी, तबतक दलितों को समाज में उचित स्थान नहीं मिलेगा। अपने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने प्रथम गोलमेज सम्मेलन 1930 में भाग लेकर ब्रिटिश सरकार की आलोचना करते हुए, अछूतों की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया। इसमें उन्होंने वंचितों के लिए निम्न अधिकारों की माँग उठाई–

समान मूलाधिकार।
भेदभावपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध संरक्षण।
सरकारी नौकरियों में स्थान सुरक्षित।
विधान सभाओं में स्थान सुरक्षित।
अल्पसंख्यकों की उन्नति के लिए अलग से एक विभाग की स्थापना।
सामाजिक बहिष्कार करनेवालों के लिए दंड की व्यवस्था
शोषण समाप्ति की ओर प्रयत्न।

इसके अलावा उन्होंने दलितों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व की भी माँग की तथा इस बात पर भी जोर दिया कि सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के अंतर्गत जिस प्रकार मुसलमानों, ईसाइयों आदि को पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त है, उसी प्रकार हरिजनों को भी पृथक् प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। उन्होंने इसी माँग को प्रथम तथा द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में जोरदार ढंग से उठाया। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक परिनिर्णय की घोषणा की, जिसमें हरिजनों को पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई थी।

इस निर्णय से वे तो संतुष्ट थे, परंतु गाँधी और अम्बेडकर के विचारों में विरोध उत्पन्न हो गया। इसके विरोध में गाँधीजी ने आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया और विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि दलित वर्ग हिन्दू समाज का एक अविभाज्य अंग है। ऐसी किसी भी स्थिति को स्वीकार नहीं किया जा सकता, जिससे हिन्दू समाज का विघटन हो। डॉ. अम्बेडकर पृथक् प्रतिनिधित्व द्वारा दलितों को एक बड़ी राजनीतिक शक्ति प्रदान करना चाहते थे। अंततः गाँधीजी के विरोध तथा उनके इस आश्वासन की, कांग्रेस द्वारा हरिजनों को अपनी ओर से अलग सीटें सुनिश्चित की जाएँगी, डॉ. अम्बेडकर ने 'साम्प्रदायिक परिनिर्माण' से अपने को पीछे हटा लिया। परिणामस्वरूप सन् 1931 में गाँधी और डॉ. अम्बेडकर के बीच एक समझौता हुआ, जिसे 'पूना समझौता' कहा जाता है।

डॉ. अम्बेडकर ने एक ओर जहाँ जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था और छुआछूत का विरोध करते हुए हरिजनों के प्रति सवर्ण जातियों के व्यवहार पर कठोर प्रहार किया, वहीं दूसरी ओर वे यह भी जानते थे कि अछूत वर्ग अपनी स्थिति के लिए काफी सीमा तक स्वयं उत्तरदायी है। स्वयं अछूतों के कुछ कार्य और उनकी आदतें ऐसी हैं, जो उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा नहीं दे सकती हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हरिजनों को भीख माँगना, मुर्दा जानवरों का मांस खाना तथा मरे हुए जानवरों का खाल उतारना छोड़ देना चाहिए; क्योंकि इन सभी कार्यों के करने से व्यक्ति के अंदर हीन भावना आती है और यह आत्मगौरव का बोध नहीं कर पाता। अतः जीवन में आत्म–सम्मान की भावना विकसित होनी चाहिए तथा स्वतंत्रता, समानता और न्यायपूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। इसलिए उन्होंने अछूतों को सलाह दिया कि उन्हें संगठित होना चाहिए और शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। वे चाहते थे कि अछूत सरकारी नौकरियों में जाए, अच्छे कार्य करे, खेती और व्यवसाय करे तथा बच्चों को शिक्षा प्रदान करें।

डॉ0 अम्बेडकर जानते थे कि दलितों की स्थिति सुधारने में दलित स्त्रियाँ अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। अतः उन्होंने महिलाओं की शिक्षा पर जोर देते हुए 20 मार्च, 1927 ई. को आयोजित एक सम्मेलन में स्त्रियों को संबोधित करते हुए कहा कि 'यदि तुम्हारे पति और लड़के शराब पीते हैं, तो तुम उन्हें खाना मत देना, अपने बच्चों को स्कूल भेजो। शिक्षा जितनी जरूरी महापुरुषों के लिए है, उतनी ही स्त्रियों के लिए भी आवश्यक है। यदि तुम लिखना–पढ़ना जानो, तभी तुम्हारी उन्नति होगी तथा समाज में स्थान प्राप्त कर सकती हो, जैसी तुम सब होगी, वैसे तुम्हारे बच्चे होंगे।' वे चाहते थे कि अछूत महिलाएँ साफ–सुथरी रहें, अच्छे वस्त्र धारण करें तथा घर–परिवार को साफ सुथरा रखें।

अतः अपने इन सभी उद्देश्यों को डॉ. अम्बेडकर ने संविधान निर्माण सभा के अध्यक्ष बनाये जाने के बाद संवैधानिक आधार प्रदान किया। उन्होंने दलितों की समस्याओं को देखते हुए संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 में सामाजिक समानता की व्यवस्था की तथा अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता संबंधी कानूनों का वर्णन किया। इसके अलावा संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए विशेष सुविधा भी प्रदान की। इस प्रकार दलितों को समाज में स्थान देने के लिए उन्होंने संविधान में अनेक प्रावधानों का उपबंध किया, जिससे समाज में दलितों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो सके। वर्तमान सामाजिक व राजनीतिक बदलाव के परिवेश में डॉ. अम्बेडकर के चिंतन व दर्शन का अभूतपूर्व योगदान है।

ग़ज़ल

विज्ञानव्रत, नोएडा
9810224571

वो हमसे अनजान रहे
जिनकी हम पहचान रहे
वो मेरा अरमान रहे
मेरी ये पहचान रहे
दोनों की पहचान रहे
ऐसा कुछ दरम्यान रहे
दुनिया तब तक दाना थी
जबतक हम नादान रहे
दोनों चुप थे यानी वो
दोनों एक जुबान रहे

–2–

और सुनाओ कैसे हो तुम
अब तक पहले जैसे हो तुम
अच्छा अब ये तो बतलाओ
कैसे अपने जैसे हो तुम
यार सुनो घबराते क्यूँ हो
क्या कुछ ऐसे वैसे हो तुम
क्या अब अपने साथ नहीं हो
तो फिर जैसे–तैसे हो तुम
ऐशपरस्ती! तुमसे! तौबा!।
मज़दूरी के पैसे हो तुम।

–3–

वो जब ख़ंजर लेकर निकलें
हम अपना सर लेकर निकलें
जो भी देखे वो ही चौंके
ऐसे तेवर लेकर निकलें
बाहर आकर उड़ना होगा
पिंजरे से पर लेकर निकलें
शौक़ हमें है घर रहने का
साथ कहाँ घर लेकर निकलें
जब चाहें तब डूबें, खुद में
एक समंदर लेकर निकलें।

–4–

अपने मुँह पर ताले रखना
खुद को आज सँभाले रखना
शहर बहुत हैं सूरज तनहा
अपने पास उजाले रखना।
खुद से दूर न होना, अपनी
बाँह गले में डाले रखना।
देख तुझे उलझाएँगे वो
तू भी प्रश्न उछाले रखना
कल ये पिंजरा ही न रहेगा
कुछ पंछी पर वाले रखना।

डॉ0 भूपेन्द्र मंडल, भागलपुर,
9431825942

रहकर दूर मुझसे, तुम भुला न सके
दिल से मेरी याद, तुम हटा न सके
मुझे भुलाकर, चैन तूने खो दिया
अपने दिल को तुम, चैन दिला न सके
खामोशियाँ तुम्हारी बता रही हैं
अपने दिल को, किसी से मिला न सके
बेचैनी दिल की, न मिटेगी तेरी
किसी का बन के, जग को दिखा न सके

पीड़ा प्यार की, तूने समझा नहीं
तुम प्यार का अमृत, दिल को पिला न सके
जिन्दगी प्यार से, फूलती–फलती है
दिल में प्यार की बगिया लगा न सके
तन्हाई में तुम जीने लगी हो मगर
किसी को अपने दिल में बसा न सके
दुआ है, खुदा मेहरबान हो तुम पर
दुआ से, खुदा को मना न सके।

केशव शरण
सिकरौल, वाराणसी,
09415295137

1 .काया विष का रस लेती है, माया–नागिन डस लेती है
मुक्त नहीं हो पाता मानव, आदत ऐसा कस लेती है
प्यार न चाहो महबूबा से, महबूबा तो बस लेती है
दंड लगाती है भटिहारिन, चादर जस का तस लेती है
जाने कितने पण लेगा रथ, खच्चरगाड़ी दस लेती है
हंस बतियाती पावन मूरत, मेरा सब अपजस लेती है
ऐसी भी होती है चितवन, खींच हृदय का नस लेती है।

2 .अपने दिल में क्या बोलूँगा, मैं महफ़िल में क्या बालूँगा
बाग़ी का भय राजा का डर, इस मुश्किल में क्या बोलूँगा
आज ख़ामोशी ओढ़े हूँ मैं, मुस्तक़बिल में क्या बोलूँगा
गर्म हवा में ठंढी चुप्पी, मलयानिल में क्या बोलूँगा
दिल्ली की तारीफ बहुत की, नागा हिल में क्या बोलूँगा।

–धर्मेन्द्र गुप्त 'साहिल'
सम्पादक, समकालीन स्पंदन

उम्र भर अच्छाइयों ने, क्या दिया सच्चाइयों ने
पर्वतों को दी बुलन्दी, गहरी गहरी खाइयों ने
चैन से सोने दिया कब, दर्द की शहनाइयों ने
ज़िंदगी का सच दिखाया, शाम की परछाइयों ने
दर्द की शिद्दत बढ़ा दी, तेजरौ पुरवाइयों ने
शेर के मोती दिये हैं, ज़ख़्म की गहराइयों ने।

झूठ उसने अगर कहा होगा, सच को तुमने छिपा लिया होगा
या भला होगा या बुरा होगा, और इसके अलावा क्या होगा
उसके चेहरे पे सादगी है बहुत, आईना कम वो देखता होगा
हाथ बेटी के पीले करके भी, चैन से वो न सो रहा होगा
जो अँधेरे मिटायेगा दिल से, बस वही मेरा देवता होगा
मैंने खुद को बना दिया पत्थर, वो भी रो–रो के थक गया होगा
गर तेरी प्यास बुझ गई 'साहिल', फिर तेरी शायरी का क्या होगा।

कविता

अल्हड़ नदी के प्यार में

सीमा असीम सक्सेना
बरेली, मो.09557929365

अल्हड़ नदी के प्यार में।
अब वह पहाड़ी नदी नहीं
फिर भी अभी अल्हड़ है
सागर के प्यार में
छोटे–बड़े पहाड़ों से घिरी उतर आई है तल पर
मैदान की घास हरी हो उठी
खेत–खलिहान उसके आने से खुश हो
मुस्काते हुए लहलहा उठे हैं
पारदर्शी पानी के भीतर से झाँकती मछलियाँ
हवा में पंख फैलाये
लहरों से खेलती अठखेलियाँ करती
हर लहर पर शरमाती, मुस्कुरा उठती
हिलोरें लेती है मन ही मन नदी
सागर से मिलने का ख्वाब सजाये
दौड़ी जाती हैं नदी
मगन खुद में
सुध–बुध बिसराए
राह में आई हर बाधा को
पार कर बहे चली जाती नदी
नदी, वह अल्हड़ नदी
अपने मीठेपन से सबको तर–ब–तर करती
नहीं थमती किसी के आग्रह पर
भोर की लालिमा से सिंदूरी होती
रात की कालिमा से विचलित नहीं होती
बन्धनों से व्याकुल हो
किनारों के प्यार से नहीं बँधती
साथ देते जाते पर भी किनारे
पत्थर घुलकर रेत बन
उसके प्यार में संग बहे जाते
नहीं होती तब भी रफ्तार कम
अल्हड़ नदी की
नहीं जानती नदी वास्तविकता
खारे विशाल समुन्दर की
वह तो उसके प्यार में है
सपनों को पलकों में सजाए
समाने को समुन्दर में उतावली है नदी
रचाएगी मेंहदी किरणों से
ओढ़ लेगी चुनर इन्द्रधनुषी
नदी महकने लगी सागर की खुशबू से
धरती अम्बर
नहीं देख पाते उसका मिलन
खाने नीले विशाल समुन्दर ने भी बाहें फैला दी हैं
नदी की आँखें सजल हो उठीं
मिलन की आस से छलक पड़ी
उसकी तपस्या पूरी हो गयी।
बिसरा के अपना खारापन अब मीठा होना चाहता है सागर
आ गया है वह भी नदी के प्यार में

ग़ज़ल

पारस कुंज
भगवान महावीर पथ स्टेशन चौक, भागलपुर
8544350561

मेरे महबूब तेरी याद भुलाऊँ कैसे
रूठना तो बहुत आता है मनाऊँ कैसे
उंगलियाँ लोग कहीं मुझ पे उठाने न लगें
दुनिया दुश्मन है मेरी तुझको बुलाऊँ कैसे
जुल्फ बिखराए क़यामत न कहीं सोई हो
ये बता मुझको मेरे दिल मैं जगाऊँ कैसे
बेवफा कैसे कहूँ उसको बावफा कहकर
जिसको पलकों पे उठाया है गिराऊँ कैस
न तो आँखों में हैं आँसू न चमन में शबनमे
बाग़ के फूल का मैं मुँह धुलाऊँ कैसे
मैं तो मिलने को परेशां हूँ मगर कैसे मिलूँ
पर नहीं, उड़ के तेरे पास मैं आऊँ कैसे
तेरे कुरबाँ मैं तेरी तीरे–नजर के सदके
जख्म पर जख्म हैं इस दिल पे दिखाऊँ कैसे
क्या करूँ हाथ में चंदन है न सिन्दूर मेरे
ऐ हँसी रात तेरी माँग सजाऊँ कैसे
लोग कहते हैं कि 'पारस' है मुसब्बिर लेकिन
तू नहीं सामने तस्वीर बनाऊँ कैसे।

कविता

कृष्ण कुमार यादव
जोधपुर, राजस्थान
मो.–09413666599

बदलती कविता

बदल रही है आज की कविता
वह सिर्फ सौंदर्य नहीं गढ़ती
बल्कि समेटती है अपने में
सामाजिक सरोकारों को भी

सदियों के अवसान के साथ
सभ्यताओं के दरकते किनारे
भूमंडलीयकरण और साम्राज्यवाद
की आड़ में पनपता नव–उपनिवेशवाद
सचेत करती है कविता इसके भी प्रति

समाजवाद और मार्क्सवाद
की धारणाओं के बीच
लोकतंत्र के धरातल पर हो खड़ी
दिखाती है कविता उनका भी चेहरा
जो वाद का मुखौटा लगाकर
करते हैं नीतियों का प्रतिवाद
पर बचाये रखते हैं अपनी कुर्सियाँ

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बढ़ती
मॉल नीतियाँ की आड़ में
शरीर भी बन जाता है मॉल
स्त्री विमर्श और देह विमर्श के
झीने आवरण में से झाँकती
कविता दिखाती है एक और चेहरा

अमेरिकी दादागिरी के आतंक पर
नष्ट होती मैसोपोटामियाई सभ्यता
और तालिबानी संस्कृति के नाम पर
नष्ट होती अहिंसावादी बुद्ध की प्रतिमा
दोनों की साम्यता को दर्शाती है कविता

भाषा, शिल्प और कथ्य के बहाने
यथार्थ छुपाकर रखती है
संस्कृतियों के दरकने का
इतिहास के करवटें बदलने का
कविता चौकन्ना करती है
आगामी पीढ़ियों को

2. प्रेयसी

छोड़ देता हूँ निढाल
अपने को उसकी बाँहों में
बालों में अंगुलियों फिराते–फिराते
हर लिया है हर कष्ट को उसने।
एक शिशु की तरह
सिमटा जा रहा हूँ
उसकी जकड़न में
कुछ देर बाद
खत्म हो जाता है
द्वैत का भाव
गहरी साँसों के बीच
उठती–गिरती धड़कनें
खामोश हो जाती हैं
और मिलने लगती हैं आत्मायें
मानो जन्म–जन्म की प्यासी हों।
ऐसे ही किसी पल में
साकार होता है
एक नवजीवन का स्वप्न

3. रिश्तों के बदलते अर्थशास्त्र

रिश्तों के बदलते मायने
अब वे अहसास नहीं रहे
बन गये अहम् की पोटली
ठीक अर्थशास्त्र के नियमों की तरह
त्याग की बजाय माँग पर आधारित
हानि और लाभ पर आधारित
शेयर बाजार के उतार–चढ़ाव
की तरह दरकते रिश्ते
ठीक वैसे ही
जैसे किसी उद्योगपति ने
बेच दी हो घाटेवाली कंपनी
बिना समझे किसी के मर्म को
वैसे ही टूटते हैं रिश्ते
आज के समाज में
और अहसास पर
हावी होता जाता है अहम्

4. विज्ञापनों का गोरखधंधा

विज्ञापनों ने ढँक दिया है
सभी बुराइयों को
हर रोज चढ़ जाती है उनपर
कुछ नामी–गिरामी चेहरों की परतें
फिर क्या फर्क पड़ता है
उसमें कीड़े हों या कीटनाशक
या चिल्लाये कोई सुनीता नारायण
पर इन नन्हें बच्चों को कौन समझाये
विज्ञापनों के पीछे छुपे पैसे का सच
बच्चे तो सिर्फ टी.वी. और बड़े परदे
पर देखे उस अंकल को ही पहचानते हैं
जिद करते हैं
उस सामान को घर लाने की
बच्चे की जिद के आगे
माँ–बाप भी मजबूर हैं
ऐसे ही चलता है
विज्ञापनों का गोरखधंधा।

कहानी :

सिसकते पहाड़

रणीराम गढ़वाली
नई दिल्ली, मो0 09953878426

गजू सोचों में उलझ गया था। मन हुआ कि करमा व पिरमा नहीं है तो वापस घर लौट चलूँ। लेकिन तभी साधो ने उसे एकांत में ले जाकर समझाते हुए कहा, 'पंचायत तेरे लिए बुलाई गई है कक्का। क्योंकि तू करमा कक्का के डंडेले में गया था। गाँव के ऊपर के जो तीन खेत तेरे हैं, लोग चाहते हैं कि उनपर पंचायत घर बने। जो भी कहना हो, वह सोच–समझकर ही कहना। कोई ऐसी बात न कहना, जिससे तेरे लिए कोई खतरा पैदा हो।' और फिर कुछ ही देर पहले उसकी घना के साथ जो बातें हुई थीं, उसने वे सारी बातें गजू को विस्तार से बता दीं। गजू को गाँव में जाकर जब पता चला कि करमा व पिरमा दोनों ही घर पर नहीं हैं, तो उसका माथा ठनका। आज से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था। गाँव में जब भी पंचायत हुई और जो भी फैसले हुए, वे सब करमा ने ही किए थे। लेकिन आज की पंचायत में न करमा है और न ही पिरमा। कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है। फिर ऐसी कौन सी पंचायत है, जिसके लिए उसे बुलाया गया है?

साधो की बातें सुनकर गजू का पारा सातवें आसमान पर चढ़ चुका था। दिकुली की कही बातें उसके मन–मस्तिष्क पर हथोड़े बरसाने लगी थी। जो दिकुली ने कहा था, वही अब साधो भी कह रहा था। 'क्या सोच रहा है गजू?यह सारी चालाकी घना की है। अगर कहीं तुम्हें कुछ गड़बड़ लगे या पंचों का न्याय तुम्हें सही न लगे तो तुम सुभागा का नाम लेकर इस पंचायत का रुख मोड़ सकते हो।'

'नहीं रे साधो! मेरे साथ जो भी हो, लेकिन मैं सुभागा का नाम इस पंचायत में नहीं ले सकता। वह इस गाँव की बहू है, बेटी है। घना की नजरों में वह कैसी है, मैं नहीं जानता। लेकिन मेरी नजरों में वह गलत नहीं है और न ही होगी। वह मुझे अपने बाप से भी ज्यादा समझती है। अगर सुभागा ने मुझसे घना के बारे में शिकायत की तो नरसिंघ देवता की सौं...। चाहे मुझे अपने गाँव छोड़ना पड़े। मैं छोड़ दूँगा। लेकिन मैं उस दिन घना के दो दाँत तोड़ दूँगा। दाँत नहीं तोड़ूँगा तो एक टाँग जरूर तोड़ दूँगा। फिर बिठाते रहना पंचायत। लोग चाहे उसके बारे में कुछ भी सोचे, लेकिन वह गलत नहीं है। किसी पर कीचड़ उछालने से उसके दिल पर क्या बीतती है, यह कोई नहीं जानता। लेकिन कीचड़ उछालने वालों को इसका एहसास तब होता है, जब कोई उनपर कीचड़ उछालता है। मजबूरी में इंसान को न जाने कब क्या–क्या करना पड़े, कोई नहीं जानता?कई बार ऐसा भी वक्त आता है कि हालात से समझौता करते हुए जीना पड़ता है। मुझे पंचायत से कोई डर नहीं है। मैं इस घना की बहुत इज्जत करता था और यह मेरे पैरों पर ही कुल्हाड़ी मार रहा है?मुझे पता है साधो! अगर आज पंचायत में ज्यादा बहस हुई या मेरे पर कोई दबाव डाला गया, तब भी मैं ऐसा कुछ भी नहीं कहूँगा, जिससे सुभागा बदनाम हो। अगर मैंने ऐसा कर दिया तो घना और मुझमें क्या अंतर रह जाएगा। कोली हूँ, लेकिन बहू–बेटियों की इज्जत करता हूँ, उन्हें इज्जत देता हूँ। घना की तरह मैं न किसी को भी बदनाम ही कर सकता हूँ और न ही किसी पर बुरी नजर डाल सकता हूँ। पंचायत मेरे लिए है, तो मुझे ही पंचायत से निबटना होगा। जीने का अधिकार सभी को है साधो। हर कोई इस संसार में आकर एक लंबी उमर जीना चाहता है। सुभागा को भी जीने का पूरा अधिकार है। उसे जीने दो साधो। पानू के साथ उन्होंने जो कुछ किया है, वह सही नहीं किया। अन्याय हमेशा सही नहीं फलता। एक न एक दिन तो उसे फूटना ही पड़ेगा। और जिस दिन वह अन्याय इस गाँव में फूटेगा, उस दिन इस गाँव में कयामत आ जाएगी।'

'घना मन का बहुत पापी है गजू। बहुत घुना है वो। उसने गाँव के कई लागों को तेरे विरुद्ध भड़काते हुए अपनी तरफ कर लिया है। घना तथा उसके साथी नहीं चाहते कि गाँव के ऊपर के तीन खेत तेरे पास रहें। तू पंचायत में पहुँच, मैं भी कुछ ही देर से आता हूँ। अगर तुझे पंचायत में जवाब देने में कोई डर लगता है, तो जानकी का एक पैग ले ले। मुँह के अंदर जानकी का स्वाद रहेगा तो तुझमें जवाब देने की हिम्मत पैदा होती रहेगी। पंचों का जवाब तू निडर होकर देता रहेगा।'

'नहीं साधो! यह ठीक नहीं है। जानकी से इस समय मैं कोई रिश्ता नहीं रखना चाहता। पंचायत में कैसे उनका सामना करना है?यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। देर मत करना, जल्दी आना?मैं किसी से नहीं डरता। मैं किसी की जमीन नहीं खा रहा। मैं अपनी मेहनत की खाता हूँ। फिर मैं क्यों डरूँ, किसलिए डरूँ?'

'अगर घना ने हमें देख लिया तो उसे शक हो जाएगा कि मैंने तुझे सारी बातें बता दी हैं। उसे किसी तरह का कोई शक पैदा न हो। इसलिए तू चल, मैं थोड़ा रुककर तेरे पीछे–पीछे आता हूँ।' साधो की बातें सुनकर गजू के दिमाग में अब सारी बातें आ चुकी थीं। जब वह पंचायत में पहुँचा, तो गाँववाले उसी का इंतजार कर रहे थे।

'अरे! ...तेरी उमर बहुत बड़ी है गजू, तेरे कोल्हू के तेल की धार की तरह।' शेर सिंह ने मुस्कुराते हुए कहा।

'ठीक कह रहे हो दाजी। कहीं ऐसा न हो कि मेरे कोल्हू की तरह आपलोगों की दुनिया घूमती हुई नजर आए?'

'गजू की बातें सुनकर शेरू चुप हो गया था। लेकिन वह गजू की बातों से तिलमिला गया था। तभी कनकटा ने पंचायत को शांत करते हुए कहा–'गाँववालो! यह पंचायत गजू के लिए रखी गई है। गजू ने गाँव में रहते हुए एक बहुत बड़ा अनर्थ किया है। उसी के लिए पंचायत बुलाई गई है। मैं पंचों से घना, बौन्या व शेर सिंह, जो कि आज की पंचायत का पंच है, उनसे निवेदन करूँगा कि वे पंचायत की कार्यवाही शुरू करें।'

कनकटा की घोषणा के बाद पंचों के चेहरे खुशी से खिल उठे थे। पंचों के लिए बिछाए गए आसन पर बैठते हुए घना ने कहा–'अबतक तुझे यह पता चल ही गया होगा गजू कि यह पंचायत तेरे लिए बुलाई गई है और क्यों बुलाई गई है?यह भी तू जान ही गया होगा?'

'नहीं...! मुझे तो कुछ भी पता नहीं है। आज तक इस गाँव में रहते हुए मैंने किसी से कोई लड़ाई–झगड़ा नहीं किया। किसी के खेत से कोई चोरी नहीं की। किसी की ककड़ी–मुंगरी नहीं चुराई। किसी की बहू–बेटियों की तरफ आँख उठाकर नहीं देखा। ऐसे में मुझे नहीं लगता कि मेरा कोई कसूर होगा। फिर भी पंच लोग बता दें तो गाँववालों को भी पता चले कि इस गाँव में शान से जिंदगी जीनेवाले गजू कोली की क्या गलती है?'

गजू के शब्दों को सुनकर पंचायत में उपस्थित लोगों ने गजू की तरफ देखा और फिर पंचायत में सुगबुगाहट शुरू हो गई थी। 'गजू जो कह रहा है, सही कह रहा है। बचपन से आजतक कोई यह नहीं कह सकता कि गजू ने कोई अनर्थ काम किया है।' मंगना ने लछी की ओर देखते हुए कहा।

'बात तो तेरी सौ आने सच है रे भुला मंगना, लेकिन अब देखना यह है कि पंच लोग गजू का कौन–सा अपराध बताते हैं?यही

सुनना बाकी रह गया है। लेकिन एक बात है भुला मंगना! अगर आज गजू पर कोई झूठा आरोप लगा, तो वह इस गाँव के लिए व पंचायत के लिए बड़े शर्म की बात होगी।'

'हाँ, दद्दा! पंच तो परमेश्वर होते हैं–ब्रह्मा, विष्णु, महेश।'

'होते भी हैं और माने भी जाते हैं, लेकिन आज जमाना बदल गया है। पंचों का फैसला भी गलत होने लगा है। अपना–अपना भला सब सोचते हैं। दो–चार रुपयों के लिए लोगों का ईमान–धर्म बिगड़ गया है। बहू–बेटियों की इज्जत लफंडरों की आँखों में चढ़ गई है। कहाँ और किससे शिकायत करें?कोई नहीं सुनता।'

तभी घना ने सबको खामोश रहने की हिदायत देते हुए कहा–'सुन रे गजु! तेरा अपराध आज से पहले कुछ नहीं था। लेकिन इस पंचायत में तेरा अपराध एक ऐसा अपराध है कि कोई भी गाँववाला तुझे माफ नहीं करेगा। जो अपराध तूने किया है, उसे सुनकर तो गाँववाले भी दाँतों तले उँगलियाँ दबा लेंगे।'

'लेकिन कक्का! मेरा अपराध क्या है?'

'भाषा सुधार गजू! भाषा सुधार। इस समय मैं तेरा कक्का नहीं, बल्कि पंचायत का पंच हूँ और पंचों के सामने हाथ जोड़कर हुजूर बोल.... हुजूर! समझा?'

'जब तक मेरा अपराध साबित नहीं होता, तब तक मैं किसी के लिए भी हाथ नहीं जोड़ूँगा। क्यों और किसलिए जोड़ूँ?अपराध साबित होगा तो हुजूर भी बोलूँगा। तुम अभी गाँव के पंच हो, मेरे नहीं। मेरा अपराध बताओगे तो जो मान–सम्मान आज तक गाँवों में हुई पंचायत में पंचों को मिला है, वही इज्जत, वही मान–सम्मान आपको मैं भी दूँगा; लेकिन पहले अपराध, कक्का! अपराध....!'

'तो तू अपना अपराध सुनना चाहता है न?तो सुन...। गाँववालो! गजू की हिम्मत तो देखो कि वह करमा के डंडेले में जाकर बैठ गया। तेरा अपराध यही है गजू तेरी हिम्मत करमा के डंडेले में जाने की कैसे हो गई?अपनी मान–मर्यादाओं के साथ– साथ तू यह भी भूल गया कि तू एक कोली है?तुझे इस गाँव में हम प्यार से रखते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं है कि तू हमारे सिर पर बैठने की कोशिश करें। अपनी औकात में रहने की कोशिश कर गजू। आगे कदम बढ़ाने की कोशिश मत कर?'

इसमें मेरा क्या कसूर है कक्का?करमा दा ने मुझे बुलाया और मैं चला गया। आज तक बताओ कि मैं कभी किसी के डंडेले में अपनी मर्जी से गया हूँ क्या?तुमने नहीं बुलाया तो मैं नहीं आया। आपलोगों ने आज पंचायत में बुलाया तो मैं आ गया। अब अगर आपने किसी को पंचायत में न बुलाया हो और वह पंचायत में आए या आ जाए, तो आप उसे क्या सजा देंगे?'

'वो हम तय करेंगे। पंचायत में आने के लिए किसी पर कोई रोक नहीं है। कोई भी आ सकता है, चाहे इस गाँव का हो या बाहर का हो। पंचायत में आने का अधिकार सभी को है। लेकिन तेरे को किसी के डंडेले में बैठने का न तो कोई अधिकार है और न ही तुझे किसी ने यह अधिकार दिया है। देख रे गजू! तू इस गाँव में अकेला है। तेरी यहाँ नहीं चल सकती। जो हम चाहेंगे, वही होगा। अगर हम कहें कि खड़ा रह, तो खड़ा रहना पड़ेगा। करमा के डंडेले में जाकर क्या तू नेगी, रावत, विष्ट या पंडत बन जाएगा?'

घना के शब्दों को सुनते हुए गजू हँसते हुए बोला–'मुझे नेगी, रावत, विष्ट, पंडत कुछ भी नहीं बनना। तुम्हारी नजरों में मेरी जाति सबसे छोटी है, लेकिन मेरी नजरों में मेरी जाति सबसे बड़ी और अनमोल है। हर कोई अपनी जाति से बहुत प्यार करता है। मैं अपनी जाति में पैदा होने का ऋण कभी चुकता नहीं कर सकता। मुझे तुम्हारे घरों में आने की कोई इच्छा नहीं है। क्योंकि मेरे मन में किसी के लिए घृणित विचार नहीं है। धन्य हैं मेरे माता–पिता जिनके घर में मैंने जन्म लिया। रही अधिकार की बात, तो मुझे किस चीज का अधिकार है और किस चीज का नहीं, यह मैं आपसे ज्यादा जानता हूँ। अगर आपने इसी बात को लेकर पंचायत बिठाई है, तो यह पंचायत आपको करमा दा के रहते हुए बिठानी चाहिए थी। जो सवाल आपने मेरे से किया है, वही सवाल आपको करमा दा से करना चाहिए था। रही खड़े होने की बात, तो वो जमाना चला गया है पंचो! मुझे आप कहीं से खरीदकर नहीं लाये हैं। गुलामी का जमाना चला गया है। अंगरेज चले गये हैं, तो उनके नियम, उनके कानून, उनकी सत्ता सब उन्हीं के साथ चली गई है।'

'तू गलत सोच रहा है गजू! अंगरेज जरूर चले गये हैं, लेकिन उनके बनाये हुए नियम ऐसे हैं, जिनके अनुसार हम चल रहे हैं। करमा से भी इस बारे में सवाल–जवाब करेंगे, लेकिन करमा के डंडेले में घुसकर तूने गाँव के देवी–देवताओं को क्रोधित किया है। गाँव के वसूलों को तोड़ने का जो तूने अपराध किया है, उसकी सजा के लिए पंचायत जो फैसला करेगी, वह तुझे मानना होगा।' बौन्या ने अपने मूँछों पर ताव देते हुए कहा।

'पहली बात तो यह है गाँववालो कि बौन्या आजतक कभी इस गाँव का पंच नहीं बना और जो दारू के लिए पिरमा के पास अपने तीन खेत बेच चुका है। दो बार वह अपनी पत्नी को पीटते हुए लहू–लुहान कर चुका है। उसके लिए कभी कोई पंचायत नहीं बैठी। आज उसे मेरे विरोध में पंच बनाया गया है। आप देख सकते हैं कि अब भी उसके मुँह से दारू की बास आ रही होगी। गाँव का नियम है कि दारू पीकर कोई भी आदमी पंचायत का पंच नहीं बन सकता, लेकिन मेरे लिए बुलाई गई पंचायत में उसे पंच बनाया गया है। दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि शेर सिंह सुबह से शाम तक भांग के नशे में चूर रहता है। कोई मरे या जिए, उसे उससे कुछ लेना–देना नहीं। कई बार तो वह भांग के नशे में इतना चूर होता है कि गाँव में जब कोई मरता है तो वह श्मशान तक नहीं जा सकता। गाँव के कायदे कानूनों को वह अपने बूट के नोक पर रखकर चलता है। गाँव में कौन–सा परिवार ऐसा है, जिससे इसका झगड़ा न हुआ हो?जो आदमी गाँव के कायदे– कानूनों को कुचलते हुए अपनी आत्मा को शुद्ध करने की कोशिश कर रहा हो, उस आदमी को यहाँ पंच बनाया गया है।

तीसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि घना कक्का हर पंचायत में पंच बनते आ रहे हैं, लेकिन उन्होंने जो आरोप मुझ पर लगाया है, वह निराधार है। उसका न कोई सिर, न पैर, न कोई जड़ और न कोई धड़ ही है। फिर भी मैं पंचायत का फैसला सुनना चाहता हूँ। लेकिन फैसला सुनने से पहले मैं पंचायत को एक बात कहना चाहता हूँ कि गाँव के देवी–देवता कोई क्रोधित नहीं होता। नरसिंघ देवता मेरे घर के कुल देवता हैं, तो करमा दा व घना कक्का के कुल देवता भी हैं। जो देवी इस गाँव की कुलदेवी है, वही देवी मेरी कुलदेवी भी है। तुम सारे गाँववाले मिलकर उसके पूजन के समय बकरे काटते हो, लेकिन मैं उसके पूजन में बकरे नहीं काटता, बल्कि में नारियल से उसकी पूजा करता हूँ। नरसिंघ देवता के लिए करमा दा व घना कक्का रोट काटते हैं, तो मैं भी रोट काटता हूँ। जब उन्हीं देवी–देवताओं को व करमा दा को करमा के डंडेले में मेरे जाने से कोई

आपत्ति नहीं, तो आपको क्यों आपत्ति हो रही है?

चौथी बात यह है कि करमा दा के गाँव में न होने पर आपने पंचायत बुलाई है। यह मेरे विरोध में आपकी एक सोची– समझी चाल है और मैं इस चाल में कामयाब नहीं होने दूँगा। फिर भी आपने उस अपराध के लिए जो मैंने किया ही नहीं, पंचायत बुलाई है तो मैं पंचों का फैसला सुनना चाहता हूँ।'

गजू के शब्दों को सुनकर पंचायत में एक बार फिर सुगबुगाहट शुरू हो गई थी। लोग दबी जुबान में कहने लगे थे कि गजू ठीक ही कह रहा है। गजू की गलती ही नहीं, तो पंचायत किस बात की?बेकार में ही हमारी नींद खराब कर दी है। कमाल है... अगर करमा दा ने उसे डंडेले में बुला लिया तो क्या हो गया?कौन–सी आफत आ गयी?बैठक तो बैठने के लिए ही होती है न?अरे! बाहर से आनेवाले लोगों को जो हमारी भाषा नहीं जानते। दरी बेचनेवाला, बर्तन बेचनेवाला, मसाले बेचनेवाला, गुड़ बेचनेवाला, पीतल व ताम्बे के बर्तनों पर कलई व टांके लगानेवाला, जिनसे हमारा कोई वास्ता ही नहीं, जिन्हें हमने कभी देखा ही नहीं, उन्हें जब हम अपने डंडेले में बुलाकर बिठा सकते हैं, तो फिर गजू को क्यों नहीं?अरे! उसे तो हम जन्म से जानते हैं। उसके पूर्वजों को हमारे पूर्वज जानते थे। फिर एक डंडेले में जाने से गजू को दोषी ठहराना न्यायसंगत नहीं है। जबकि उसे करमा ने खुद डंडेले में बुलाया था। जहाँ तक देवता का सवाल है गजू के घर में नरसिंघ देवता होने के कारण करमा व घनानंद को उसकी पूजा नहीं करनी चाहिए।

'यह तो जोर–जबर्दस्ती का मामला हुआ। अगर कोई अपराधी है तो वह करमा है। लेकिन ये लोग करमा से कैसे कहेंगे?इस घना ने जिस समय अपना पुराना मकान तोड़कर नया मकान बनाया था, उस समय इसने करमा से पचास हजार रुपये करजा लिये थे और अभी तक वह करमा के दस हजार ही वापस लौटा पाया है। ऐसी हालात में वह करमा से कैसे कहेगा?'

'बात सौ आने सच है। गजू ठीक ही कह रहा है। आज करमा नहीं है, इसीलिए घना ने पंचायत बुलाई है। लेकिन अब देखना यह है कि पंचायत गजू को क्या फैसला सुनाती है?'

'सुना है कि गजू से तीन खेत हड़पने के लिए ही यह पंचायत बुलाई गई है। लेकिन जिस दिन गजू के बेटे सियानंद को पता चलेगा या वह बदली होकर इस चौकी पर आएगा, तो पूरे गाँव को तहसील तक का रास्ता नपवा देगा। वह भी मीटर से नहीं, बल्कि एक–एक ईंच से।'

पंचायत में तरह–तरह की बात हो रही थी। तभी बौना ने कहा–'शांत, लोगो शांत! गजू आज कुछ ज्यादा ही बोल रहा है। अगर इसे करमा के डंडेले में जाना ही था, तो इसे पंचायत बुलानी थी। लेकिन इसने ऐसा नहीं करके पंचायत की ही नहीं, बल्कि इस गाँव की तौहीन की है। पंचायत को नजरअंदाज करते हुए यह जहाँ जाना चाहे तो ऐसा नहीं हो सकता, और न हम ऐसा होने देंगे। गाँव का अगर कोई आदमी हो तो उसे नजरअंदाज किया जा सकता है; लेकिन एक कोली को नहीं। करमा के डंडेले में जाने का गजू ने जो अपराध किया है, वह एक सोचा–समझा अपराध है। इसलिए पंचायत इसे अपराध मानते हुए गजू को सजा सुनाती है। अगर गजू इस सजा को मानने से इंकार करता है, तो उसे दूसरी सजा भी साथ–साथ सुना दी जाती है।'

'सुन रे गजू! तेरी आत्मा, तेरे विचार व करमा के विचार क्या हैं, हम नहीं जानते?लेकिन तून करमा के डंडेले में जाने से पहले यह नहीं सोचा कि जो काम तू कर रहा है। उससे आनेवाले दिनों में गाँव में ही एक बहुत बड़ी विकट समस्या खड़ी हो सकती है और जब ऐसी कोई समस्या गाँव के सामने आती है, तो फिर पंचायत का सहारा लेना पड़ता है। इसीलिए हमने भी पंचायत का सहारा लिया है।' शेर सिंह ने अपने सिर को खुजलाते हुए सिर में जमी रूसी को झाड़ने की कोशिश करते हुए कहा।

'आपने पंचायत का सहारा लिया है, तो अब अपना फैसला भी सुना दीजिए।' गजू ने मुस्कुराते हुए कहा।

गजू के शब्दों को सुनकर पंचों के चेहरे खिल उठे थे। पंचायत में बैठे लोग भी फैसला सुनने के लिए तैयार हो चुके थे। सबकी नजरें पंचों के चेहरे पर टिक चुकी थीं। कुछ देर तक पंच आपस में खुसर–फुसर करते रहे। उसके बाद घना ने मुस्कराते हुए कहा–'पंचों का फैसला है गजू कि सब कुछ जानने के बाद भी तूने करमा के डंडेले में जाकर घोर अपराध किया है। हम चाहते तो पटवारी व कानूनगो के पास जाकर तेरी रपट लिखवाकर तुझे बंद भी करवा सकते थे, लेकिन हमने ऐसा नहीं किया। क्योंकि अगर हम ऐसा कर देते तो पता नहीं फिर तू कितने सालों के बाद जेल से बाहर निकलता। लेकिन हमारे एक गाँव की बात है। गाँव की बात गाँव के बाहर जाने से गाँव की ही बदनामी होती है। तुझे भी तो एक दिन इसी गाँव में रहते हुए अपनी लड़की की शादी करनी है। इसलिए हमने यही सोचकर पंचायत बुलाई थी कि गाँव में अगर फैसला हो जाए, तो सबसे अच्छी बात है। पंचों का काम होता है निष्पक्ष न्याय करना और वही हमने भी किया है। अगर करमा ने तुझे अपने डंडेले में बुला भी लिया तो तुझे नहीं जाना चाहिए था। अरे! उसके जाने से तुझे युधिष्ठिर की तरह साक्षात् स्वर्ग मिलनेवाला नहीं है।'

'मुझे पता है। लेकिन मैं युधिष्ठिर नहीं बनना चाहता। क्योंकि मुझे अपने रास्ते में दुर्योधन खड़े दिखाई दे रहे हैं। सजा सुनाओ कि सजा क्या है?ये द्वापर व त्रेता की बातें मुझ अनपढ़ की समझ से बाहर है।'

हमने तेरे बारे में हर तरह से सोच–समझकर ही फैसला लिया है गजू। इसलिए पंचायत तुझे यह सजा सुनाती है कि तुझे आज से और अभी से गाँव से बाहर कर दिया जाता है। अगर तू चाहता है कि तू गाँववालों के साथ रहें और गाँववाले तेरी हारी–बीमारी में तेरे काम आएँ, तो गाँव के ऊपर जो तेरे तीन खेत हैं, वे खेत तुझे पंचायत को देने होंगे। अगर तू ऐसा कर लेता है, तो तेरी सजा माफ कर दी जाएगी। अगर तू ऐसा नहीं करता है, तो आज के बाद तू न इस गाँव में रहेगा और न ही इन गाँववालों के खेतों होकर ही कहीं जाएगा। अब यह तेरे ऊपर निर्भर करता है कि तू गाँव के साथ रहना चाहता है या नहीं?'

घनानन्द के शब्दों को सुनकर गजू कुछ देर तक शांत रहते हुए मन ही मन सोचने लगा था कि वह पंचों को क्या जवाब दे?दिकुली ने कहा था कि जो कुछ भी कहना, बहुत सोच समझकर कहना। उतावलापन मत दिखाना। उसने एक बार सरसरी नजर से पंचायत में आए लोगों पर डाली, तो साधो ने उसे मना करने के लिए अपनी उँगली से चुपचाप इशारा कर दिया था। गजू साधो का इशारा समझ गया था। इसलिए उसने बड़े शांत होकर कहा–'पंचो! आपने मुझे पंचायत में बुलाकर जो फैसला सुनाया है, मैं उसे मानने से साफ–साफ इनकार करता हूँ। पंचायत का फैसला तो तब मान्य होता है, जब मुदई व मुदाल दोनों पंचायत में होते। लेकिन इसमें तो मैं ही मुदई भी हूँ और मुदाला भी। फिर मैं इस फैसले को क्यों और किसलिए मानूँ?आपलोग न तो मेरे को गाँव से अलग कर सकते हैं और न ही आप मेरे तीन खेतों पर कब्जा कर सकते हैं। अगर आपको लगता है कि मैंने कोई गलत काम किया है, तो जब करमा दा गाँव में होता, तब पंचायत बुला लेते।

या फिर जब करमा दा आएगा, तब पंचायत बुला लेना। उस वक्त पंचों का जो भी फैसला होगा, वह मुझे मान्य होगा।'

'लेकिन हम तेरे लिए बार–बार पंचायत नहीं बुला सकते गजू। जो फैसला पंचों ने सुना दिया, वह पत्थर की लकीर समझ। अगर तू गाँव से समझौता करना चाहेगा तो अर्जी दे देना। फिर पंचायत में पंचों के सामने तेरा और गाँववालों का समझौता हो जाएगा। इसके लिए हम तुझे तीन दिन का समय देते हैं। अगर तीन दिनों तक तेरी तरफ से हमें कोई जवाब नहीं मिला, तो चुपचाप इस गाँव को छोड़कर कहीं चले जाना। अगर नहीं गया, तो इस गाँव के रास्तों से तुझे कहीं भी आने–जाने नहीं दिया जाएगा।'

'पंचो! अगर आपका यही फैसला है तो मैं आपके फैसले को नकारता हूँ। जिस तरह से पंचायत में मैं खड़ा हूँ, उसी तरह से करमा दा को भी खड़ा होना चाहिए था। अच्छा होगा कि करमा दा के आने के बाद आप इस पंचायत को दुबारा बुलाएँ।'

'फैसला न मानने से तू पंचायत की बेइज्जती कर रहा है गजू। तुझे जो कुछ कहना है, वह तीन दिन बाद पंचायत में कहना, समझ गया है न तू?' शेरू ने अपनी जगह पर खड़े होते हुए कहा।

'जब पंचायत में करमा दा ही नहीं, तो फिर दंड किस बात का?' कहकर गजू भरी पंचायत में चीखते हुए बोला, 'मैं गजू कोली, भरी पंचायत में अपने कुल देवता, नरसिंघ देवता की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं आज की इस पंचायत को नकारता हूँ। इसका फैसला नहीं मानता और न ही इस पंचायत के पंचों को मानता हूँ। अगर मेरे साथ कोई जोर–जबर्दस्ती की गई तो उसका फैसला मेरे कुल देवता, नरसिंघ देवता करेंगे। उसके दरबार में न्याय होता है, अन्याय नहीं। उसकी नजरों में सभी एक समान हैं। फिर भी मैं गाँव का मान–सम्मान रखते हुए कहता हूँ कि अगर इस बात को लेकर फिर से मुझे पंचायत में बुलाया जाता है तो उस पंचायत में करमा दा का होना भी जरूरी है। क्योंकि उस पंचायत में करमा दा ही मुझे कसूरवार ठहरा सकते हैं। मैं आपकी पंचायत की फैसला मानने से इंकार करता हूँ। अब आपको जो करना है कर लो?'

तू क्या सोचता है गजू कि 'तू ऊँचे सुर में बोलता रहेगा, तो हम चुपचाप बैठे रहेंगे?' मूसा ने अपने बाजू गुलटते हुए कहा।

बाजू गुलटने की जरूरत नहीं है मूसा। पंचायत के नियमों के मुताबिक अगर पंचों को मेरे विरुद्ध महापंचायत में जाना है, तो वे भी जा सकते हैं। लेकिन अगर पंच नहीं गये, तो मैं पंचायत के फैसले के विरुद्ध में अपने बचाव के लिए महापंचायत बुलाऊँगा। जो फैसला महापंचायत करेगी, वही मुझे मान्य होगा।'

कहकर गजू चला आया था। उसके शब्दों को सुनकर पंचायत में उपस्थित लोग व पंच सन्न रह गये थे। आजतक इस गाँव में जब भी पंचायत हुई है, किसी ने इस तरह से पंचों का अपमान नहीं किया था और न ही किसी में इतनी हिम्मत थी कि पंचों का अपमान कर सकें।

लेकिन गजू ने वह सब कर दिया था। जिसकी किसी को उम्मीद नहीं थी। गजू के जाने के बाद भी पंचायत में उपस्थित लोग व पंच अपनी–अपनी जगह जड़ हो चुके थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि गजू अचानक ही यह सब कैसे कह गया?हमेशा शांत रहनेवाले गजू के इस तरह के तेवर गाँववालों ने कभी नहीं देखे थे। अगर देखे होते तो उन्हें गजू से ऐसी अपेक्षा अवश्य होती कि गजू तर्क–वितर्क की बातें जरूर करेगा। लेकिन आजतक जिस गजू के चेहरे पर कभी गुस्सा व नाराजगी देखने को नहीं मिली, वही गजू सारी पंचायत को धमकी देकर चला गया था।

'ये लो कर लो बात। अब तुम उस गजू का क्या कर लोगे?उठाओ उसका कुलुडू (कोल्हू) और मारो उसके सिर पर। मैं तो कहता हूँ कि जाकर उसका कुलुडू ही तोड़ दो। न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। कुलुडू ही नहीं रहेगा तो खाएगा कहाँ से?' शामू ने बीड़ी का कस खींचते हुए कहा।

'चुपकर बे शामू! चुपकर–चुपकर! जो आदमी यहाँ पर सरे आम पंचायत के बीच में अपनी बातों का हथोड़ा मारकर चला गया हो, तू उसी का हथोड़ा उसी के सिर कैसे मार लेगा?जाकर मारकर तो दिखा न! जिसे तुम डरपोक समझ रहे थे न?वो बाघ की तरह दहाड़ता हुआ चला गया। देखा–देखा तुम सबने?अरे! क्यों चुप हो?लकवा मार गया है तुम सबको क्या?जो जहाँ बैठा है, वहीं बैठा हुआ है। उसका कुलुडू तोड़कर कौन–सी वीरता दिखा लोगे। अगर वह अपनी पर आ गया तो उसे तुम्हारे गाँव की कोई जरूरत ही नहीं रहेगी। उसका लड़का पटोरी है। जहाँ वह रहेगा, वहीं ये रह लेंगे। जिस दिन उसके बेटे को तुम्हारी पंचायत के बारे में पता चलेगा। उस दिन तुम सभी को दुनिया घूमती हुई नजर आएगी। एक आदमी को सारा गाँव इस तरह से नहीं दबा सकता।' इस बार साधो ने अपनी मूँछों पर ताव देते हुए कहा, 'जिस गजू के लिए तुमने पंचायत बुलाई थी, वह अपना असली चेहरा दिखाकर चला गया है। नहीं मानता वह तुम्हारी पंचायत व तुम्हारे फैसले को... । जाओ... अब महापंचायत में जाओ। सात गाँवों के पंचों की पंचायत बुलाकर उसे गाँव से निकलवा कर उसके तीनों खेतों पर कब्जा करो। मेरी बात मानो, तो उसे फाँसी पर चढ़वा दो?पानू को तो झूठे केस में फँसवाकर जेल में बंद करवा दिया। अब गजू को बंद करके दिखाओ न?सात गाँवों के लोग व सात गाँवों के पंच जब जमा होंगे और तब पंचायत होगी,तो ये गजू इसी तरह से वहाँ भी गरजेगा। इसी तरह से... । तुम में से किसी में भी ऐसी हिम्मत है कि वह सात गाँवों के पंचों के बीच में गजू के सवालों का जवाब देते हुए इसका मुँह बंद कर सके?एक बात मैं साफ–साफ कह देता हूँ कि सात गाँवों के पंचों की पंचायत में अगर इसके हक में फैसला न हुआ, तो उसका लड़का क्या करेगा?कुछ पता नहीं। फिर लड़ते रहना जिन्दगी भर, चक्कर काटते रहना जिन्दगी भर। उसका बेटा सियानंद सारे कानून जानता है। जब उसकी मुसगड़ी (चूहे मारनेवाली जाली) में फँसोगे न, तो चूहों की तरह कुंकयाते रहोगे। उस वक्त तुमको कोई बचानेवाला नहीं होगा। जज कोर्ट में हथोड़ा ठोंकते हुए आर्डर–आर्डर कहते रहेंगे और तुम अपने–अपने हाथ जोड़ते हुए हुजूर! माई–बाप कहते हुए गिड़गिड़ाते रहोगे।'

'तू क्या कहता है रे साधो?क्या तू गजू से मिल गया है?या फिर तूने उससे रिश्वत ले ली है?घना ने अपनी आँखें तरेरते हुए कहा।

'कैसी बातें करते हो दाजी?गजू कोई मेरा रिश्तेदार थोड़े ही है, जो कि मैं उसका बचाव करूँ। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि एक गजू की इस गाँव के सामने क्या औकात?जब चाहो टेंटुआ दबा दो, जब चाहो सामान उठाकर नदी में फेंक दो। जब चाहो, उसकी बीबी–बच्चों को रात के अँधेरे में काट दो। बेटा उसका पटोरी हुआ तो क्या हुआ?डी.एम. तो नहीं है न?इतने बड़े गाँव में एक कोली की क्या बिसात कि वह आँख उठाकर चल सके?लेकिन एक बात अवश्य कह रहा हूँ कि दाजी! आजतक इस गाँव में इतना बड़ा कलेजा मैंने किसी आदमी का नहीं देखा। सचमुच दिलेर आदमी है। अगर ऐसे दिलेर आदमी हमारे गाँव में दो–चार और हो जाएँ, तो गाँव के ये पुराने रीति–रिवाजों को, सड़े–गले नियमों को और ये पंचायतें जिनसे कभी किसी का भला नहीं होता, बदलने में बहुत आसानी होती। आज भी पुरानी बेड़ियाँ अपने पैरों में डालकर हम जो फैसले लेते हैं, वे किसी का भला नहीं करते, बल्कि उन फैसलों से भला होने की जगह और बुरा हो जाता है।

दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई है और तुमलोग अभी तक किसी की जमीन हथियाने, किसी की इज्जत लूटने, किसी को गाँव से बाहर करने के फैसला के अलावा कोई फैसला ही नहीं लेते। अरे! अगर करमा कक्का ने उसे अपने डंडेले में बुला लिया तो क्या हुआ। गंथी ने भी तो गजू को अपने डंडेले में बिठाया है। लेकिन गंथी के गाँववालों ने तो कोई पंचायत नहीं बिठाई। बल्कि गंथी के गाँववाले तो उसे अपनी बैठक में बुलाते हैं। लेकिन बात यह है कि तुमलोग उसके गाँव के ऊपर के तीन खेत हड़पना चाहते हो। अगर तुम्हें पंचायत भवन ही बनाना है, तो उसके एक खेत में पंचायत भवन बन सकता है। फिर तीन खेत किसलिए?अगर पंचायत भवन के लिए तुम प्यार से उससे बात करते तो शायद वह तुम्हें अपना एक खेत दे भी देता। वह नहीं देता तो मैं और करमा दिलवा देते। लेकिन नहीं, तुम्हें तो उसके तीन खेत चाहिए। क्योंकि तुम्हारी इच्छा यह है कि गाँव के ऊपर एक कोली के न तो खेत ही होने चाहिए और न ही उसका मकान ही होना चाहिए। ये गाँव अब वे गाँव नहीं हैं, जिन्हें तुम आज से सौ साल पहले के गाँव समझ रहे हो। अब यहाँ अंगरेजों का राज नहीं है। यहाँ हमारा राज है, तुम सबका राज है और गजू का राज है। हाँ, इतना जरूर है कि यह तुम्हारा अपना अधिकार है कि आप उससे बातें करना चाहें, न करना चाहें, उसकी सहायता करना चाहें या उसकी सहायता न लेना चाहें–यह सब तुम्हारा अपना अधिकार है।

'तू क्या चाहता है कि हम उसे मार दें?' शेरू ने कहा।

'मैंने ऐसा तो नहीं कहा। मेरा कहने का मतलब है कि वह तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। तुम जो चाहो करो, लेकिन दाद देनी पड़ेगी गजू की, जो कि सबको चैलेंज कर गया है।सीना ठोक–बजाकर बोला है उसने।'

'हम उससे डरते हैं क्या?'

'मैंने ऐसा कब कहा रे बौन्या?अरे! भुला, उससे कोई नहीं डरता। लेकिन उसके नरसिंघ देवता के डर से अच्छे–अच्छे की बोलती बंद हो जाती है। इतना बड़ा गाँव क्या नहीं कर सकता। रातोंरात चुपचाप उसके खेतों की चारों ओर दीवाल खड़ी कर पंचायत का बोर्ड लगा दो और सुबह–सुबह पटवारी को बुलाकर उसका नाप–तौल कर उसे पंचायत के नाम करवा दो। अगर हजार–दस हजार पटवारी ले भी लेगा, तो गजू का मूतना भी बंद हो जाता। भटकता रह एक डॉक्टर से दूसरे डॉक्टर के पास। खाता रह यूरीप्लस की गोली। उसके बाद जब–जब वह मूतता तो उसकी चीखें तुम सबको सुनाई देती। मर गया रे..अ..ह..आ! बहुत दर्द हो रहा है। मर गया रे...!'

'तू कहना क्या चाहता है साधो! इन घुमावदार पहाड़ों की तरह घुमा–फिराकर बातें मत कर। साफ–साफ क्यों नहीं बोलता?डर लगता है क्या?' घना ने अपनी आँखें तररते हुए कहा।

साधो की बातें सुनकर सबकी नजरें उसके चेहरे पर टिक गई थीं। 'घुमा–फिराकर मैं कोई बात नहीं कर रहा हूँ दाजी। ये आपके सोचने का तरीका है कि आप क्या कर सकते हैं। आपको क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए?यह आपको सोचना है?क्योंकि जब सात गाँवों के पंचों की पंचायत बैठेगी तो उसमें बोलना इतना आसान नहीं होता। आपने गजू पर जो अपराध लगाया है, वह सही था या नहीं?क्या सवाल–जवाब हुए?मुदई–मुदाला पंचायत में थे या नहीं?कहने का मतलब है कि एक–एक शब्द व उसकी कार्यवाही फिर दुबारा से होगी। वही सवाल–जवाब होंगे, तर्क–वितर्क की बातें होंगी। झूठ–फरेब, सच, सब सामने आएगा, तब कहीं फैसला होगा और उस फैसले के निबटारे में दो दिन, तीन दिन, पाँच दिन तथा सात दिन भी लग सकते हैं। लेकिन एक बात आपको स्पष्ट तौर पर कह देना चाहता हूँ दाजी कि अगर फैसला गजू के हक में गया तो फिर तुमलोग दुबारा गाँव में उसके लिए पंचायत नहीं बिठा सकते। जहाँ तक मेरा अपना अनुमान है गजू की कोई गलती नहीं है। मैं उसे मारने–तोड़ने की बातें नहीं कर रहा। मैं तो स्पष्ट कह रहा हूँ कि तुम्हारे पास एकता है, ताकत है, पंचायत है, तुम्हारे अपने फैसले हैं, तुम्हारे पास जमीन–जायदाद है, गाँव के रास्ते हैं। लेकिन गजू के पास क्या है?कुछ भी नहीं...। एक कोल्हू के अलावा क्या है?वह तो हर तरह से घिरा हुआ है, दबा हुआ है। और दबाना चाहते हो तो दबा लो। एक मुट्ठी मिट्टी ऊपर से और डाल दो। अरे! एक कोली ही तो है वह। आगे–पीछे कोई बोलनेवाला नहीं। बाद में खोज होती है तो होती रहे। वैसे भी उसकी कहीं कोई जान–पहचान तो है नहीं। सभी जगह अपने ही आदमी तो हैं। जहीं उसकी फाइल जाएगी, सालों वहीं दबी रह जाएगी। कहाँ जाएगा?साधो के शब्दों को सुनकर पंचायत में उपस्थित लोगों की नजरें साधो के चेहरे पर टिक गई थीं। पिरथी ने पंचायत की कार्यवाही के दौरान उजाले के लिए जलाए दो गैसों में से एक गैस को बुझाया और फिर वह घनानंद के घर की ओर चल पड़ा था। उसके पीछे–पीछे घनानंद, बौन्या, शेरू और फिर गाँव के अन्य लोग भी चल पड़े थे।

कविता

सुसंभाव्य पत्रिका हाथ में, जैसे ही आ जाती है
तन–मन पुलकित हो, हृदय–कली खिल जाती है
अप्रैल बीस बाला रोचक, अंक सामने आया है
संपादकीय में ही पहले, मन को पूर्ण डूबाया है
अन्तराष्ट्रीय आमंत्रण का, थोड़ा बहुत खटकता है
उच्चारण के वक्त कंठ में, बार–बार अटकता है
प्रूफ रीडिंग है कठिन काम, वक्त अधिक देना होगा
तथ्य लोकवाणी में अंकित, उसको भी लेना होगा
'नाकाबंदी', नई रोशनी', कहानियाँ मन भाती है
उर्जा की कविताएँ दोनो, ग़ज़ल नुमा में आती है
संस्मरणें, दो भेंट वार्ता, गीत, ग़ज़ल भी भाते हैं
आलेखों के साथ समीक्षा, मन में भाव जगाते हैं
संस्थापक प्रधान संपादक, दयानन्द का क्या कहना
उन्हें हृदय पर धार लिया है, जैसे नव बाला गहना।

हीरा प्रसाद हरेन्द्र
कटहरा, सुलतानगंज, भागलपुर
मो०–9931854246

कहानी :

लेकिन

अमित चौबे
9304332947

भवेश आज निर्मल और रिया को खाने पर बुला लिया था और अब वे उन दोनों को स्टैंड तक छोड़ने गये थे। उन दोनों ने खाने की जमकर तारीफ की थी। उसे अच्छा लगा था। यहाँ तक कि भवेश को भी कहना ही पड़ा था–'हाँ, निर्मल! ये बात तो है। हमारे यहाँ के खाने की सभी तारीफ करते हैं। सच, तो फिर महीने में 10 दिन बाहर ही क्यों खाते हैं। भवेश की नजरें भी उसकी निगाहों से टकरायी थीं। उन्होंने तुरंत ही अपनी निगाहें फेर ली थीं। शायद उसके चेहरे के भावों को पढ़ लिया उन्होंने। उसे अच्छा नहीं लगा था। उसने पानी का जग उठा लिया था और फिर उसे गिलास में डालने में व्यस्त हो गई थी कि तभी रिया ने पूछ लिया था–"अच्छा, भाभीजी! ये तो बताइये आप इतनी बढ़िया मछली बनाते कैसे हैं, मुझे भी बताइये न इसका तरीका?सच, बहुत बढ़िया बनी है। मैंने तो वाकई इतनी स्वादिष्ट मछली आज तक नहीं खाई। यकीन कीजिए, मैं मुँह देखे की बात नहीं कह रही, सच्ची! मुझे भी सीखनी है, बताइये न!'

'अरे! नहीं, तुम कुछ ज्यादा ही तारीफ कर रही हो।' वो संकुचित हो उठी थी। भवेश के सामने इतनी तारीफ से वो बहुत असहज महसूसने लगी थी। पर रिया के निश्छल भाव से पूछे गये सवाल पर मुस्कुराये बगैर भी नहीं रह पाई थी। लेकिन ये मुस्कान पहले वाली मुस्कान अब कहाँ रही। हाँ, ये जरूर है कि अब आँसू नहीं उमड़ते। पहले इन उमड़ते बेताव आँसुओं को छिपाने में कितनी मुश्किल होती थी। लेकिन इन बीते वर्षों में हालात ने उसे कितना बदल दिया है। आँसुओं की आवाजाही भी बंद हो चुकी है, पर है तो आखिर इंसान ही। पहले ऐसी तारीफें उसे असहज नहीं करती थीं, पर भवेश के सामने अब ऐसी तारीफें उसे अतीत के गहरे धकेल देती हैं। मुश्किलों का दौर बीत चुका है, पर खलिश तो.... ऐसे मौकों पर कभी–कभी... बेमुरब्बत यादें.... और इन बेमुरब्बत यादों को बुलाने की जरूरत थोड़े ही पड़ती है। लेकिन ये वक्त ही आखिरकार मरहम बन सच को न स्वीकारने की जद्दोजहद से मुक्त भी कर देता है। एक दिन विराम लग ही जाता है। तभी रिया ने हँसते हुए उसे टहोका दिया था–'भाभीजी! मैं बहुत जिद्दी हूँ। आप मुझे नहीं जानतीं, तभी टाल रही हैं। पर मैं मानूँगी थोड़ी ही। मैं तो मैं हूँ। 'जिद्दन' नाम रखा है आपके निर्मल भैया ने। पूछ लीजिए।' उसने बड़े प्यार से उमग कर निर्मल को देखा था। आरती अपने ख्यालों की दुनिया से वापस वर्तमान में आ गई थी।'भाभीजी! क्या सोचने लगीं?अब बता भी दीजिए।' ये निर्मल थे।

'बताती हूँ, कहीं भागी तो नहीं जा रही।' उसने सौंप का प्लेट बढ़ाते हुए कहा था।'हाँ, भाभीजी! प्लीज बता दीजिए और वो भी पूरे विस्तार से। वरना तो हम आ करके और मछली की फर्माइश कर–करके आपको बोर कर देंगे और फिर आप स्त्रियों का ही तो फर्ज बनता है कि एक–दूसरे की इन 'फन' में मदद करें, ताकि वो पति नाम के जीव दिल पर हमेशा–हमेशा के लिए काबिज हो जाएँ इस पेटवाले रास्ते से। फिर तो किला फतह।' उसकी सोच से अनजान निर्मल ने रिया की तरफ देखकर ठहाका लगाया था। रिया लजा गई थी। उसे दोनों का प्यार देखकर अच्छा लगा था। उसने रिया को कहा–'चलो, कमरे में चलते हैं। थोड़ी देर और तुम्हारा साथ रहेगा मुझे और तुम्हें मछली की बाबत बता भी दूँगी। हम दोनों थोड़ी देर में आते हैं। आप तबतक बातें कीजिए निर्मलजी।' आरती ने रिया को बताया था–कैसे टमाटर और मेथी के पत्ते डालकर स्वादिष्ट मछली बनती है, पर तमाम समय उसके दिमाग में उठा–पटक चलती रहती थी, इस पेट के रास्ते दिल पर कब्जा करनेवाली बात पर। जाते समय निर्मल तथा रिया ने उन दोनों का धन्यवाद किया था और उन दोनों को भी किसी दिन बच्चों के साथ आने का न्यौता भी दिया था। आरती तो उन्हें बाहर गेट तक छोड़ आई है, पर भवेश ऑटो स्टैंड तक उन्हें छोड़ने चले गये हैं। निर्मल को शादी में स्कूटर मिला तो है, पर निर्मल ने अपने छोटे भाई के लिए उसे छोड़ दिया है। रिया ने ही बताया था–'भाभीजी! निर्मल ने दफ्तर में लोन के लिए अप्लाई किया है। लोन में थोड़ी देर लगेगी, फिर हम स्कूटर से ही आएँगे। कोई दिक्कत नहीं होगी।' बताते हुए रिया के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं थी। वाकई, रिया दिल की अच्छी है। उसके दिल ने दुआ की कि उसकी शादीशुदा जिंदगी खुशियों से भरी रहे। वो हमेशा हँसती रहे। कोई गम न छू पाये उसे। वो लौटकर खाने की मेज साफ करने लगी थी। इतना सारा कुछ देखकर निर्मल और रिया भाव विह्वल हो गये थे। पराये शहर में इतना अपनापन पाकर रिया की आँखें गीली हो गई थीं, जिसे उसने साफ महसूस किया था और उसके अंदर भी कुछ पिघला था। भवेश हैं भी तो कितने मिलनसार और बातें करने का गुर तो कोई भवेश से सीखें। पर सब सिर्फ घर से बाहर।

अब तो वह 'जूठन' बनकर ही रह गई है और भवेश ने उसे हमेशा के लिए त्याग दिया है। भला 'जूठन' किसे पसंद आती है?तो भवेश को ही क्यों पसंद आनी थी। मेज की सफाई में अचानक ही मछली का काँटा चुभ गया था। वो वापस वर्तमान में आ गई थी। उसे फिर से याद आई थी निर्मल की कही बात– 'हाँ, कहते तो हैं पति के दिल का रास्ता पेट से होकर जाता है।' लेकिन आज वो जानती है, चाहे उम्रभर इस रास्ते पर चलती रहे, पर पहुँचेगी कभी नहीं वहाँ, जहाँ वो पहुँचना चाहती थी। पर अब नहीं चाहती। अब कोई इच्छा नहीं रही। अपमान का समंदर वो नहीं लाँघ सकती। पर रिया का क्या, उसकी तो अभी–अभी शादी हुई है। अभी तो कुछ वर्षों तक नयेपन का आकर्षण ही हावी रहेगा और फिर रिया उसकी तरह पागल थोड़े ही है, जो भावनाओं में बह जाएगी और कभी कोई ऐसा मोड़ आया भी। ईश्वर न करे आरती की तरह उसे भी। जरूरी तो नहीं कि ईमानदारी का नशा चढ़ेगा जिसके जोश में होश खोकर वो निर्मल को सब कुछ बता देगी और अपनी जिंदगी को शूली पर चढ़ा देगी। जाने कितनी औरतों की जिंदगी में कितना कुछ उस जैसा घटता होगा, पर सब उसकी तरह बेवकूफ थोड़े ही होती है, जो अपने ही हाथों अपनी ही कब्र खोद लेती है। एक वही है, जिसने अपने जुनून में अपनी पूरी जिंदगी बर्बाद कर ली है। पर अब हो ही क्या सकता है?जो होना था, हो चुका। अब कुछ नहीं हो सकता। कोई कुछ नहीं कर सकता। कुछ नहीं। उसने बैठक में झाँककर देखा तो नेहा और अप्पू बैठे सीरियल देख रहे थे। ये सीरियल बच्चों को ही नहीं, उसे भी बहुत पसंद है, पर अभी उसका मन ठीक नहीं लग रहा है। वो जाकर बिस्तर पर लेट गई थी। उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। यादें कभी–कभी इतनी हावी हो जाती हैं कि फिर कुछ भी तो अच्छा नहीं लगता। न टेप सुनना, न टी.वी. देखना, न पढ़ना, कुछ भी नहीं। इस समय भी उसे सालों पुरानी बीती बातें बेतरह याद आ रही हैं। वही बातें जो बीतकर भी नहीं बीततीं, गुजरकर भी नहीं गुजरतीं। कार्तिक की बातें। जब कार्तिक बी.पी.एस.सी. की कोचिंग करने उसके घर आया था। कार्तिक!....कार्तिक!....कार्तिक....!

हाँ, कार्तिक के छोटे शहर में कोचिंग की सुविधा नहीं थी, पर यहाँ पटना में एक नहीं, कई–कई नामी प्रतिष्ठित कोचिंग संस्थान थे और वो कोचिंग भी तो यहीं था, जहाँ से कार्तिक के चचेरे भाई ने पढ़ाई की थी और अब बी.डी.ओ. था। कार्तिक भवेश के बहनोई का सगा भाई था और कार्तिक के पिता ने अपने भाई के बेटे के परिणाम से उत्साहित होकर उसे यहाँ पटना भवेश के पास भेजा था। उसे ना तो करने का उपाय ही नहीं था। उसके होंठों पर एक फीकी–सी मुस्कान उभरी थी। ये कार्तिक तब कितना संकोची हुआ करता था। शुरू के दिनों में तो वो अपने कमरे में ही बैठा किताबों में सिर डाले दिन गुजार देता था। निकलता तो सिर्फ नित क्रिया को और फिर कोचिंग जाने को। बच्चों से भी तब कहाँ ज्यादा बोलता था। शहर में किसी और को भी कहाँ जानता था। कोचिंग में भी इतनी जल्दी दोस्ती नहीं बना पाया था कार्तिक। उसे साफ–साफ याद है। शुरू में उसे बहुत कोफ्त हुई थी कार्तिक को देखकर। एक तो वैसे ही भवेश को लेकर परेशान थी, ऊपर से ये अनचाहा, अनजाना। उसे तब ये डर भी सताता कि कहीं कार्तिक पर ये राज जाहिर न हो जाए कि आरती की भवेश से बनती नहीं। बात कहीं बाहर न चली जाए। रिश्तेदारी में बातें न बनने लगें। वो क्या जवाब देगी?किसको दोष देगी?लोग जानकर ही क्या कर लेंगे?सिवाय कि झूठी सहानुभूति का पात्र बन जाएगी वो। उसी में खोट निकालेंगे। वो स्त्री है न और खोट तो है भी। समाज का साथ उसे क्यों मिलेगा और एक दिन की तो बात थी नहीं कि वो छुपा लेती। पूरे तीन महीने रहना था कार्तिक को। और भवेश?भवेश को वो इन सालों में अच्छी तरह जान गई थी। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता था। कौन क्या सोचता है उनके बारे में, इसकी परवाह ही नहीं की उन्होंने। बस खुद की समझ में जो आता, वही तो करते थे। उसकी तरह नहीं कि बातचीत बंद रहने पर भी अगर कोई रिश्तेदार घर आ गया, तो संवाद बना लेती थी, ताकि बात खुलने न पाए। उसे कितनी मुश्किल होती थी स्थिति सँभालने में, ये तो वही जानती थी। भवेश तो इसमें उसकी कोई मदद नहीं करते थे अपनी तरफ से। एक जरा नहीं। कुछ पूछती तो भी रिश्तेदारों के सामने भी रूखा सा जवाब देते, बस जवाब देने भर को, नपा–तुला न एक शब्द कम, न एक शब्द ज्यादा। वो बनावटी मुस्कान लिए भरसक सहज होने का दिखावा करती रहती जब तक कि रिश्तेदार लौट न जाते।

ईश्वर! ईश्वर! उसने तो अपना पाँव ही कुल्हाड़ी पर दे मारा था। खून ही खून छितरा पड़ा था। जब देखो तब, जिधर देखो उधर। सच! सच! सच! ये कैसा सच था?सच कहकर हल्का हो जाना चाहता था। कोई राज नहीं रख पा रही थी। ये गलत होता न?उसने भवेश को बहुत चाहा था। टूटकर। चाहने की हद तक। आखिर अपराध बोध से उबरने की जद्दोजहद में कबतक तड़तपी रहती?और इस सच ने ही तो मुश्किल खड़ी कर दी थी। उन दिनों तो भवेश से अबोला ही चल रहा था, जब कार्तिक घर आया था। नेहा और अप्पू को स्कूल भेजने और भवेश के दफ्तर चले जाने के बाद उसे उदासी घेर लिया करती थी। भवेश फिर से पूरे 4 महीने से अबोला किये हुए थे। बिस्तर भी अलग किया हुआ था। ये तो अबतक उनकी आदत बन चुकी थी। उसे तोड़ने का उनका ये अजीब नुस्खा था। कारगर और अचूक। जाने कहाँ से सीखा था?बच्चे छोटे थे। उन्हें इसका आभास भी कहाँ था कि उनकी माँ किस अजाब से गुजर रही थी और उसका कसूर?बस, इतना कि उसने अपनी अधूरी रह गई पढ़ाई पूरी करनी चाही थी। बस, इतनी सी तो बात थी।

इतनी सी बात!

हाँ, इतनी सी बात।

पर नहीं, बात इतनी सी ही नहीं थी।

बात तो कुछ और ही थी।

नागवार! हिमाकत!

मैट्रिक करते न करते उसे ब्याह दिया गया था और दो सालों में ही नेहा और अप्पू भी आ गये थे। उसकी दुनिया ही बदल गई थी। बच्चों में डूबी–डूबी, खुश–खुश। जिंदगी जैसे नदी की कल–कल बहती धारा। छूट गई पढ़ाई की सोचने की फुर्सत ही कहाँ थी?और जरूरत ही क्या थी?लेकिन....

सात साल बाद जब नेहा 6 और 5 के हो गये तो अचानक ही उसने पढ़ने की बावत सोचा था और वो भी क्या उसकी अपनी मर्जी थी?ये तो भवेश ही थे, जिन्होंने उसे मजबूर किया था। हाँ, मजबूर ही तो किया था भवेश ने उसे। कितनी बेवश, कितनी लाचार हो गई थी वो उन दिनों। कितना खुश रहती थी वो अपनी छोटी सी गृहस्थी में। मगन। नेहा–अप्पू और भवेश। यही तो थी उनकी प्यारी सी दुनिया। उसे और कुछ कहाँ चाहिए था। सुबह बच्चों को स्कूल भेजती, भवेश से चुह्लों के बीच खाना निपटा लेती। उनके दफ्तर जाने के बाद इत्मीनान से बाकी का काम निबटाती। नहाती–धोती और दोपहर में अपनी पसंद की किताबें पढ़ती रहती। किताबों की खातिर उसने लाइब्रेरी की सदस्यता ले ली थी। कितने खूबसूरत और हसीन दिन थे। कितने तरह के किरदार किताबों से निकलकर उससे गुफ्तगू करते। कभी हँसाते, कभी रुलाते। सोचने को विवश करते तो कभी कितनी अनोखी जगहों की पहचान कराते। घर बैठे ही दुनिया जहान की सैर और कितनी अजानी बातें! और 2 बजते ही फिर अपनी गृहस्थी। बच्चों के घर लौटने के बाद तो उनकी सार–सँभाल में लग जाती। उनके कपड़े बदलना, कपड़े तहाना, हाथ–मुँह धुलाना, सामने बैठाकर उनके ना–नुकुर को सँभालने, नाज उठाते, उन्हें खाना खिलाना और उनकी शैतानियों की लंबी फेहरिस्त सुनना, जो वो हर रोज स्कूल में करके आते और फिर सो जाते। आरती भी या तो थोड़ी देर को सो लेती या कोई पत्रिका जो अधूरी रह गई हो पूरी कर लेती। बच्चे जब सामने के मैदान में खेलने चले जाते तो वह बरामदे से ही उनकी निगरानी रखती। एक दिन भी इसमें चूक हो जाती, तो कभी कुहनी छिल जाती, कभी कहीं चोट लग जाती। कभी पाँव में मोच आ जाती, तो कभी किसी दूसरे की सांसत कर देते। लेकिन ये सिफत तो थी उस महल्ले की औरतों में, कभी भी बच्चों को लेकर तू–तू, मैं–मैं नहीं हुई। नहीं तो बच्चों के झगड़े और न तो बड़ों के दिल तक में दीवार डाल देते हैं, न तो लोग बातचीत तक बंद कर लेते हैं।

शाम को जब दफ्तर से भवेश लौटते तब उनके साथ बच्चे भी घर लौट आते। साथ–साथ नाश्ता, थोड़ी मान–मुनहार और फिर होम वर्क। वह भी खुशी–खुशी भवेश के साथ बातें करती और फिर रसोई में आ जाती। दिन बीत रहे थे। कोई गम ही नहीं था। कहने को भी नहीं। उसकी खुशी के लिए इससे ज्यादा कुछ चाहिए भी तो नहीं था। लेकिन फिर...। हाँ, सात साल बीते न बीते भवेश के लिए उसका आकर्षण फीका पड़ गया था। अब वो उसे पहले की तरह तवज्जो नहीं दे रहे थे। यहाँ तक कि उसका तिरस्कार करना भी शुरू कर दिया था। वो जैसे आसमान से गिरी थी। ये क्या हो गया है भवेश को?कहाँ क्या गलत हो गया?वही भवेश है, वही आरती। वही

परिस्थितियाँ?भवेश के लिए उसका उफनता प्यार वही है, तो भवेश ऐसे क्यों बदल रहे हैं?जब भी कोई बात होती, उन दोनों में पहले की तरह किसी बात पर कोई चर्चा छिड़ती, उनमें सहमति नहीं बनती तो भवेश चिढ़ जाते। पहले 'अच्छा छोड़ो बाबा, जाने दो हम कोई और बात करते हैं' कहते और बात वहीं खत्म हो जाती, पर अब ऐसा नहीं रह गया था। भवेश कमजोर पड़ने लगते तो चिल्ला उठते। उनका एक ही अस्त्र होता–'मैट्रिक पास ही हो न?तुम क्या बात करोगी। पहले ग्रैजुएशन तो कर लो। तब बात करना। तुम क्या जानो?' वो सन्न रह जाती। पहले कभी अपमान नहीं सहा उसने। ससुराल में बस 15 दिन ही तो रह पाई थी। फिर भवेश के साथ ही आ गई थी। अम्माजी ने उसे ही नहीं, अपनी तीनों बहुओं को बेटों के साथ भेज दिया था। बड़ी दोनों को भी 15–15 दिन ही अपने पास रखा था उन्होंने। कहती थीं–पति के साथ ही पत्नी को सुख होता है। मैं अपनी बहुओं को और सासों की तरह अपने पास, बेटों से अलग नहीं रख सकती। ये परंपरा गलत है। जब हम पति–पत्नी को जरूरत होगी तब तो तुम्हीं तीनों को सँभालना है न?उसे अच्छा लगा था। इतने अच्छे सास–ससुर मिले थे। दोनों जेठ–जिठानियों से भी अधिक आत्मीय संबंध थे। शायद दूर रहने के कारण ही सही। कोई कटुता नहीं थी। सब मधुर–मधुर ही था। प्यार था। तवज्जो थी। लेकिन अब उसका दिन बदल रहा था; क्योंकि भवेश बदल रहे थे। वो तड़प उठती थी। उसके आँसू निकल आते थे। अब वो क्या करे। किससे मदद माँगे?नहीं, बाबूजी से नहीं कह सकती। बाबूजी दुखी होने के सिवा कुछ नहीं कर सकेंगे और अम्माजी! अम्माजी ने तो खुश जिंदगी जी है, वही बेटे और बहुओं को दी है और अम्माजी को कह भी दे तो क्या भवेश उनकी बात मानेंगे?भवेश की तो आदत ही बनने लगी थी, गाहे–बगाहे उसे अपमानित करने की। वो अपनी कई कोशिशें कर–करके हार चुकी थी। बार–बार उगले जाते जहर बुझे शब्दों ने आखिरकार उसे पढ़ाई की ओर मोड़ ही दिया। हाँ, वो ग्रेज्युएशन जरूर करेगी। भवेश ने सोचा होगा, घर का काम है, बच्चों की देखभाल है, तो ग्रेज्युएशन नहीं कर सकेगी। पर उसने अब इरादा पक्का कर लिया था। एक जुनून हो जैसे। हाँ, ये एक गलती तो हुई थी उससे। लेकिन ये गलती है, तब वो ये कहाँ जानती थी?'हुक्म के गुलाम' ने पहली बार 'हुक्म उदुली' की थी। तभी तो आरती ने जब प्राइवेट से इंटर का फॉर्म भरने की बात भवेश से की थी, भवेश तिलमिला गये थे–'पढ़ने की जरूरत क्या है अब?जो कर रही हो, वही करो। चुपचाप घर देखो, बस। बेकार दिमाग मत चलाओ।' मगर अब वो माननेवाली नहीं थी। इस तरह अपमानित होकर नहीं जी सकती। मना करने के बावजूद उसने इंटर का फॉर्म भरा था। भवेश की नाराजगी के बावजूद। और भवेश हत्थे से उखड़ गये थे। फॉर्म भरनेवाली एक गलती। पर क्या वो उसकी अपनी चाहत थी?भवेश ने ही तो मजबूर किया था?और अब वही?पर क्या करती आरती आखिर?या तो अपमानित होती रहे या इस मैट्रिक के माने से बचे। उसने फॉर्म भरा था और जवाब में भवेश ने 'अबोले' की शुरुआत कर दी थी। इस तरह बता दिया था, उसकी जिद्द का परिणाम अच्छा नहीं होगा। उनकी 'हुक्म उदुली' बहुत भारी पड़ेगी। लेकिन तब उसने ये सोचा ही नहीं, ये कैसी मुश्किल शुरुआत थी! गृहस्थी और बच्चों की देखरेख के बीच बचे समय में पढ़ाई करने लगी थी। पढ़ने की धुन में इस तरफ ज्यादा ध्यान ही नहीं गया। सोचा था कुछ दिनों की नाराजगी है। हमेशा थोड़े ही ऐसा रहेगा। अभी ताजा–ताजा गुस्सा है, फिर सब ठीक हो जाएगा। वो पढ़ाई में जुटी रही थी।

रात को जब बच्चे सो जाते, भवेश सो रहे होते वो टेबुललैंप जलाकर पढ़ने बैठ जाती। उसके इंटर का रिजल्ट आया। मैट्रिक की तरह इस बार भी उसे प्रथम श्रेणी मिली थी। उसकी मेहनत रंग लाई थी, पर उसकी जिंदगी बदरंग हो गई थी। भवेश के प्यार का रंग वैसे भी बहुत चटख तो कभी नहीं रहा, पर इतना फीका भी तो नहीं था कि दीखे ही नहीं। चटख रंग तो होना भी नहीं था, जब एकनिष्ठ थे ही नहीं और एकनिष्ठ होने की जरूरत भी क्या थी, जब वो सौ जान से कुर्बान हो। हाँ, सब कुछ जानने के बाद भी। यही तो सच था। कितना बेवश और शर्मनाक?जब भी विरोध किया सहज भाव से कह दिया–'सब चलता है उमर में।' वाकई, चलता था, तभी तो चल रहा था। रो–धोकर गाड़ी पटरी पर आ ही जाती थी। चल ही रही थी। आज भी चल ही रही है। उसके स्कूल में पढ़ा रही मिसेज हालदार, मिसेज कोहली और मिसेज दूबे की गृहस्थी। क्या वाकई इसको चलना कहते हैं?आज आरती करीब से जानती है इस दर्दभरे दमघोटू सच को। जाने कितनी स्त्रियाँ का सच होता है ये। पहले तो बस पढ़ा भर था, देखा नहीं था। खुद पर जो गुजरना था। उसी को क्यों बचना था। वो भी अब हलालों में शामिल थी। पर जिंदगी फिर भी चल रही थी। आज आश्चर्य होता है सोचकर। पर सच्चाई तो यही थी।

पढ़ने की जिद भवेश के पौरुष पर अघात थी। नहीं समझ पाई थी तब आरती। पहली बार उसने अपनी मर्जी की थी। वे भवेश को असह्य हो गया था। वो देख रही थी। भवेश को उसके रिजल्ट की खुशी नहीं हुई थी। भला अपनी अवहेलना पर भी कोई खुश हुआ है। पर अब क्या हो सकता था?हिमाकत तो हो चुकी थी। एक दिन भवेश ने एक और खुलासा किया था–'ब्याह के 7–8 सालों में पति–पत्नी का प्यार समाप्त हो जाता है; क्योंकि उनमें नयेपन का आकर्षण खत्म हो जाता है। सब रूटीन हो जाता है। नीरस और बासी।'

आरती सकते में थी। ये क्या कह रहे हैं भवेश! नीरस! बासी! उसे तो कभी ऐसा महसूस नहीं हुआ। उसका प्यार तो भवेश के लिए आज भी वही है। उनकी कारगुजारियों के बाद भी?उसे तो नयेपन की जरूरत कभी महसूस नहीं होती और अगर यही सच है तो क्यों शुरू के वर्षों में ही उसका आकर्षण चुक गया था?ऐसा तो 7–8 सालों में होना था न?पर भवेश तो भवेश ठहरे। उनके अपने नियम थे, अपनी सोच। आरती चुपचाप भवेश को देखती रहती। उसकी दुनिया इस तरह रुख बदलेगी, उसे विश्वास नहीं होता था। उसकी आवाज भवेश तक नहीं पहुँच रही थी। वो हार रही थी और इन्हीं हालातों में उसने ग्रैज्युएशन का फॉर्म भी भरा और एक बार फिर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। पर जिंदगी में वो पिछड़ रही थी। कागजों की प्रथम श्रेणी ने एक बार फिर जिंदगी में पिछड़ने का प्रमाण पत्र थमा दिया था। भवेश बस सब्जी, राशन, दूध, बच्चों की जरूरतों तक ही तो बात करते। देर से आते। उसे उसकी औकात ही तो बता रहे थे। भले ही भवेश ने कहा था ग्रैज्युएशन करो। बात करने के काबिल बनो, पर उसे ग्रैज्युएशन नहीं करना था। मैट्रिक ही रहना था। भवेश से हमेशा कमतर। क्यों उसे भवेश की बराबरी करनी थी?क्यों उसे बात करने के काबिल बनना था?क्या वाकई सिर्फ ग्रैज्युएशन भर कर लेने से व्यक्ति बात करने के काबिल हो जाता है?सलीका, तमीज और भावनाओं का कोई वजूद नहीं?कोई अहमियत नहीं?तभी तो भवेश ने उसे फिर एक चोट दी थी। 'सिर्फ ग्रैज्युएशन कर लेने से क्या होता है?बहुत–सी औरतें ग्रैज्युएट हैं, तुमने भी कर लिया, लेकिन खाओगी तो मेरा ही। भोजन तो मैं ही दूँगा।' भवेश

ने मुँह तक, हाथ ले जाकर निवाले की शक्ल बनाते हुए किस हिकारत से कहा था। वो लहूलुहान औंधे मुँह गिरी थी। ये क्या कह रहे थे भवेश?अकल्पनीय...असह्य। भवेश उसे ऐसी चोट दे सकते हैं। चोट गहरी थी। जख्म गहरा। ये जख्म कभी भरेगा नहीं?जो उसके स्वाभिमान पर किया था भवेश ने। या कि पत्नी का कोई स्वाभिमान ही नहीं होता। आरती कभी भूल पाएगी इस अपमान को?मुँह तक जाता हर निवाला अटकेगा। क्या भवेश इतनी सी बात नहीं समझते?फिर कैसे?कैसे कहा उन्होंने?उनकी जबान से ये शब्द यूँ ही तो नहीं निकले?तब क्या भवेश वाकई ऐसा ही सोचते हैं?वो उन पर बोझ है। क्या गृहस्थी में उसके किये गये श्रम का कोई मोल नहीं?पति–पत्नी के रिश्ते का सच यही है?अपमानजनक, हृदयविदारक?भवेश पर उसका कोई अधिकार नहीं। अगर भवेश के पैसों पर उसका अधिकार नहीं तो भवेश पर ही कैसा अधिकार?तो फिर भवेश उसके कैसे हुए?उसके अपने?अगले पूरे दो दिनों तक खाना उसके गले से नहीं उतरा था। उससे चाय तक नहीं पीयी गई। पर आखिर कब तक?हारकर उसे रोटी खानी ही पड़ी। अपमान में सनी, आँसुओं में डूबी भवेश की रोटियाँ। भवेश से उसने बतलाया तक नहीं कि उसने खाना नहीं खाया। भवेश का क्या?वो तो ये भी कह सकते थे–'इस मान का क्या?'

हाँ, उसका भला क्या मान था। शुरू के दिनों से ही तो भवेश ने उसके 'मान' का मजाक बनाया था। तब वो कितना रोती थी। शुरुआती वर्षों में ही भवेश ने कई संबंध बनाये थे। वो इनसे पीछा छुड़ाने के लिए महल्ला बदल देती थी। अपने 'मान' पर मरहम रख लेती थी। यही एक उपाय था, जो उसके वश में था। वो जानती थी, ये मर्ज आसानी से नहीं जाता। समझाने से भी नहीं। कितने लोगों के कितने सारे किस्से उसने खुद देखे–सुने थे और अब उसकी बारी थी। वो भवेश को चाहती थी और उसके लिए तब इतना ही काफी होता था कि वो स्त्रियाँ अब भवेश की पहुँच से दूर हो गई हैं, पर रूप का दर्प, प्यार का गरूर सब हाथों से फिसल गया था। रह गयी थी जिंदगी की तल्ख सच्चाई। उसने सब सहा था। आरती बहुत रोई थी इन दो दिनों में, पर रोने से न पहले कुछ बदला था, न अब बदलनेवाला था। हारकर उसने अम्माजी को बुला लिया था। अम्माजी के लिए सब कुछ प्रत्याशित था। पहले कभी आरती ने उन्हें कुछ नहीं बताया था। वो तो सोचती थीं–उनकी तीनों बहुएँ सुखी हैं। उन्होंने पूरी बात सूनी थी। भवेश को समझाने की कोशिश भी की थी। लेकिन भवेश को तो न बात सुननी थी, न समझनी थी। उन्होंने साफ–साफ कहा था–'मेरे घर के मामले में मत पड़ो।' अम्माजी ने थक–हारकर चेतावनी दे दी थी–'आरती की कोई गलती नहीं। प्राइवेट नौकरी आरती भी कर सकती है। अपना व्यवहार सुधारो। अगर तुम नहीं बदले तो मैं तुम्हारे घर कभी नहीं आऊँगी।' अम्माजी ने उससे भवेश के बर्ताव के लिए माफी माँगी थी और चुपचाप लौट गयी थी। पर भवेश पर न अम्माजी के आँसुओं का कोई असर हुआ, न चेतावनी का। दिन बीत रहे थे। वो दूरी जो एक ही छत के नीचे फैलती जा रही थी, उसकी गिरफ्त में आरती बेतरह घुटने लगी थी। उसकी छटपटाहट लगातार बढ़ती जा रही थी। भवेश लगातार उसके अंतस् में चलती भावनाओं से निर्लिप्त बने रहे थे। आरती अब ग्रैज्युएट थी। भवेश को कोई बात नहीं करनी थी। उसकी 'हिमाकत' की कोई माफी नहीं थी भवेश के पास। जब हिमाकत ही नहीं सुधारी जा सकती थी, तो उसका दाम्पत्य कैसे सुधरता। आँसुओं की भी कोई बिसात कहाँ थी। दूरियाँ बढ़ती ही गई थीं और ऐसे में ही एक दिन कार्तिक आया था। उसकी उलझनें हमेशा के लिए उलझ गई थी। हाँ, हमेशा के लिए। उसे याद है। उसे कार्तिक का आना अच्छा नहीं लगा था तब। उसका चुपचुप रहना उसे और परेशान कर देता था। जो परस देती सामने, वही खाकर उठ जाता, कभी कुछ नहीं माँगता। उसे खीझ होती। पता नहीं, भूखा ही नहीं रह जाता हो। ऐसी भी क्या शर्म! उसे क्या पता चलेगा, अगर कहेगा नहीं कि और कुछ चाहिए या नहीं। थाली में रहते–रहते अगर अपने मन से परस देती तो खा लेता। नहीं देखती तो हाथ धो लेता, उसे बुरा लगता–'और लेना था?' 'नहीं, ठीक है और नहीं लेना था।'

अजीब मुसीबत थी। तभी वो अचानक बीमार हो गई थी। पूरे चार दिन तक बिस्तर पकड़े रही थी, बुखार में धुत। बुखार कभी कम हो जाता, कभी बढ़कर अचानक 103°–4° तक पहुँच जाता। भवेश नियमित दफ्तर जाते रहे। कार्तिक चार दिनों तक कोचिंग नहीं गया। बच्चों के लिए, भवेश के लिए टिफिन तैयार करना, खाना बनाना, बच्चों को स्कूल के लिए मदद करना, उसे दवा देना, बुखार ज्यादा हो तो पट्टी बदलना, सब कार्तिक के जिम्मे ही तो था। कार्तिक ने जिस तरह सँभाला था, दूसरा शायद ही करता। अम्माजी बीमार थीं, बड़ी जिठानी उन्हीं के पास थीं और छोटी जिठानी मायके में थी। जच्चगी थी। कोई सँभालनेवाला नहीं था, जो आ पाता। पर कार्तिक ने सँभाल लिया था। अपनी माँ की बीमारी में मदद करते–करते उसने ये सब सीख लिया था। बाद के दिनों में उसी ने बताया था। उसको कोई छोटी बहन नहीं थी न, इसी वजह से।

बच्चों ने कार्तिक की झिझक तोड़ दी थी। घर का माहौल ही बदल गया था। इन चार दिनों के बाद तो ऐसा लगा कि कार्तिक से उसकी वर्षों की पहचान हो। उसका संकोच बह गया था। अब तो उसकी बातें खत्म होने में ही नहीं आती थीं। सुबह कोचिंग से आने के बाद उसकी जो बकबक शुरू होती थी, तो जबरन उसे कमरे में बंद करने के बाद ही खत्म होती। वो उसे याद दिलाती–'कार्तिक पढ़ना नहीं क्या?तुम्हें बाबूजी ने यहाँ गप्पें लड़ाने के लिए भेजा है?पढ़ोगे नहीं तो तुम्हें घर से निकाल देंगे और मैं क्या जवाब दूँगी उन्हें?बोलो। कुछ समय है या भूसा भर रखा है खजाने में।' कार्तिक अच्छे बच्चे की तरह पढ़ने लगता–'जो हुक्म, माई–बाप।' पर बच्चे आते ही दरवाजा खोल देते और वो फिर शुरू हो जाता। उसे कार्तिक अच्छा लगने लगा था। भवेश की लगातार उपेक्षा से विचलित और परेशान आरती को चार दिनों के पूरे समय के साथ ने कार्तिक के करीब ला दिया था। बच्चे जब पढ़ने बैठ जाते, कार्तिक भी फिर से पढ़ाई में मशगुल हो जाता और वो अपनी उलझ रही गाँठें सुलझाने लगती। लेकिन कहीं कुछ गलत हो रहा था। इसका अंदाजा होने लगा था उसे।

कार्तिक की निगाहों में कुछ था, जो उसे अच्छा लगता और साथ ही सहमा भी देता। उसकी खुद की भावनाएँ भी तो उसके वश में नहीं थीं, जैसे वो उसकी नहीं, किसी दूसरे की भावनाएँ हो, जिनपर उसका जोर नहीं चलता था। उसके संस्कार इसकी इजाजत नहीं देते थे। उसके दिल में इस तरह के ख्यालात जन्म ले सकते हैं, ये तो उसने सपने में भी नहीं सोचा था, कभी नहीं। सोचती भी कैसे, भवेश से अलग दूसरा कोई कभी उसके ख्यालों तक में नहीं आ सकता था। उसके दिलोदिमाग में रस्साकस्सी चलती रहती। नहीं...ये नहीं हो सकता...ये नहीं होना चाहिए, पर हार हुई थी उसकी। दिल

और दिमाग में एक को ही जीतना था। दिल हावी हो गया था। भवेश जो नहीं थे उसके साथ। काश! कि उस वक्त शहर में होते, जब वो भावनाओं के भँवर में डूबी अकेली जद्दोजहद कर रही थी। किनारे पर आने को छटपटा रही थी। पर भवेश तो दूर पर गये थे। पूरे महीने के लिए। नियति ने अपना खेल दिखा दिया था। अघटित घट गया था। लेकिन उसके संस्कार उसपर हावी हो गये थे। वो अपराध भाव से घिर गयी थी। स्त्री थी न। पर कार्तिक के लिए इसमें अपराध भाव तो था, पर आरती जितना नहीं। वो पुरुष था। संस्कारों से मुक्त। भवेश की तरह। उसे भवेश के इतिहास की जानकारी थी और उन दोनों के दाम्पत्य के खोखलेपन की, दरारों की भी। उसने खुद ही बताया था कार्तिक को सब कुछ। सारा का सारा, ज्यों का त्यों। जिस दर्द को वो अकेले सहती रही थी, उसे कार्तिक ने साझा किया था। बिना किसी योजना के, बिना किसी सोच–विचार के, बिना किसी उद्देश्य के।

भवेश लौट आये थे। कार्तिक की क्लासें खत्म हो गई थीं। उसे अब वापस जाना था। उसने तो अब अपनी जिम्मेदारियों में आरती को भी शामिल कर लिया था। लेकिन आरती ने साफ– साफ शब्दों में कार्तिक से अपने रिश्ते को खत्म कर दिया था– 'अब कभी मेरे घर मत आना कार्तिक! तुम आये तो शायद मैं कमजोर पड़ जाऊँ। बस! इस जन्म में इतने भर का ही साथ था। शायद पिछले जन्म में कोई रिश्ता तीन महीनों के लिए अधूरा रह गया था। वो पूरा हो चुका। मेरे बच्चे हैं और मैं अब भी भवेश से प्यार करती हूँ। उनसे अलग नहीं रह सकती...।' वो जानती थी, कार्तिक उसे बच्चों समेत अपनाना चाहता है। लेकिन वो बच्चों का पिता नहीं बन सकता। बच्चे कभी भी उसे पिता नहीं स्वीकारेंगे। वे तो भवेश से गहरे जुड़े हैं और भवेश ने उससे निगाहें फेरी हैं। बच्चों ने नहीं और वो खुद...। अब भी उसके दिल पर भवेश का कब्जा था। उनसे अलग होने की, अलग रहने की कल्पना ही दु:सह थी। जो संस्कार घुट्टी में मिले हों, उससे पीछे छूटता है। वो कार्तिक के साथ खुश रह ही नहीं सकती थी। भवेश को छोड़कर जाने का अपराध बोध उसे जीने कहाँ देगा। उसने साफ–साफ, बिना लाग–लपेट के कार्तिक को बताई थी ये बात। कुछ भी तो नहीं छुपाया था। उसे ये चाहे, वो भवेश को चाहती थी। वो दो हिस्सों में बँट गई थी। उफ!

कार्तिक चला गया। आरती का एक हिस्सा उससे अलग हो गया था। कार्तिक नहीं जानता, वो किस यंत्रणा से गुजरी थी। कार्तिक के जाने के बाद उसके दिल का बोझ कम नहीं हुआ थ। सोते–जागते, उठते–बैठते उसके संस्कार उसे जलाते रहते। कार्तिक की याद एक पल को उसे सहलाती, तो दूसरे पल अपराध बोध की आग उसे धू–धू कर दहका देती है। वो छटपटा उठती। भवेश की उपेक्षा पूर्ववत् थी। इस बीच क्या कुछ घट गया था, इससे अनजान उनकी अपनी ही दिनचर्या थी, जिसमें बच्चों की जगह थी, आरती की नहीं। लेकिन आरती के जज्बात उसे परेशान कर रहे थे। लगातार। उसे लगता उसने भवेश को धोखा दिया है। उसने अबतक कोई बात भवेश से छिपाई ही कहाँ थी, तो इतनी बड़ी बात छुपा पाती और आखिर उसने एक दिन भवेश को सारी बात बतायी थी। देर तक जब भवेश कुछ बोले नहीं थे, तो उसने उनकी तरफ देखा था। भवेश फटी–फटी निगाहों से उसे देखे जा रहे थे। फिर जैसे तन्द्रा टूटी थी, अविश्वास से भरकर पूछा था–'तुम झूठ बोल रही हो, मुझे जलाने को। है न?'

'नहीं, मैंने आज तक झूठ नहीं कहा कभी आप से, आप जानते हैं। ये सच है।' कहते हुए उसकी जबान कट रही थी, पर कहना तो था। 'मेरे सिर पर हाथ रखकर कसम खाओ।' भवेश को यकीन नहीं हो रहा था। उसने अपने आँसू पोंछे थे और सिर झुकाकर भवेश के माथे को धीरे से छुआ था। भवेश ने दोनों हाथों में अपना चेहरा छुपा लिया था और रो पड़े थे। उनसे अपनी हार बर्दाश्त नहीं हो रही थी। 'किसी भी पुरुष के लिए ये बर्दाश्त करना बहुत मुश्किल है।' कार्तिक ने कहा था और भवेश को बताने से भी मना किया था। पर वो मजबूर थी। भवेश से सच छुपाना बहुत मुश्किल था। अपराधबोध का दंश नहीं सह पा रही थी। और अब?लाचार सी भवेश को रोता देखती रही थी और खुद भी रोती रही थी। भवेश को दिलासा देने को उसके पास था ही क्या?चोट तो उसी ने पहुँचाई थी और अब उन्हें छटपटाना देखने को विवश थी। भवेश को रोते देखना उसके लिए किसी यंत्रणा से कम नहीं था। उसका कलेजा मुँह को आ गया था। थोड़ी देर बाद जब भवेश बाथरूम से मुँह धोकर आये थे, तबतक भी उसका अपना रोना बंद नहीं हुआ था। रोते–रोते उसकी हिचकियाँ बँध गई थीं।

भवेश बिस्तर पर लेट गये थे, बिल्कुल चुप। वो जानती थी, उनके भीतर कितनी उथल–पुथल मची थी। उसने भवेश के पैरों में सिर रख दिया और हिचकियों के बीच बोली थी–'माफ कर दीजिए।' लेकिन भवेश ने तब भी माफ नहीं किया था और अब इतने वर्षों के बाद भी नहीं। उन दिनों जब भेवश उसकी तरफ घृणा से देखते, वो तड़प उठती। 'ऐसे नफरत से देखते हैं। आपका भी तो कितनी औरतों से रिश्ता रहा है। मैं तो आपसे नफरत नहीं करती। मैंने तो आपका सच स्वीकार किया है।' वो रो पड़ती, लेकिन भवेश उसकी दलील सुनने को तैयार नहीं थे। समझने को तैयार नहीं थे। समय रुकता नहीं। पहाड़ से दिन एक–एक करके सरकते चले गये थे और पूरे 5 वर्षों बाद कार्तिक की शादी की खबर आई थी। कार्तिक अपनी बात रखी थी। बी.डी.ओ. के पद पर ज्वाइन करने के बाद भी शादी टालता रहा था। जब उसे यकीन हो गया कि भवेश उसे तलाक नहीं देंगे, तब कहीं जाकर उसने शादी की थी।

उसके होठों पर एक फीकी मुस्कान चली आई थी। कार्तिक ने अपनी जिम्मेदारी निभाई थी। पूरी ईमानदारी से। उसके भवेश भैया ने आरती को तलाक नहीं दिया। क्या वाकई! तलाक तो हो चुका है, पर किसी को खबर नहीं। एक ही छत के नीचे कितनी दूरियाँ हैं, इसे कौन जानता है?कोई भी तो नहीं। अम्माजी फिर लौटकर नहीं आई। उन्होंने अपना वचन निभाया। बाहर वालों को पता नहीं होता। किसके घर के अंदर क्या चल रहा है। सब नकाब ओढ़े रहते हैं। और कार्तिक! कार्तिक को भी कुछ पता नहीं। पता चलता भी कैसे?उसने जब भवेश के टूर से आने के बाद उसे अपनी जिंदगी से हमेशा के लिए चले जाने को कहा था, तो कार्तिक चला तो गया था, पर...। कार्तिक एक हफ्ते में ही लौट आया था। उसे रहा ही नहीं गया था। वो समझ सकती थी। उस वक्त घर पर वह अकेली थी। बच्चे स्कूल गये थे और भवेश दफ्तर। कार्तिक को देखते ही उसकी साँसें रुक गई थीं। उसने... उसने तो...कार्तिक को मना....।'

वो बोली थी–'मैंने भवेश को सब कुछ बता दिया है कार्तिक! सब कुछ।' कार्तिक रो पड़ा था–'ये क्या अनर्थ किया आपने?' वो कभी आपको माफ नहीं करेंगे। अब मैं कभी यहाँ नहीं आ पाऊँगा... आपको कभी नहीं देख पाऊँगा। कैसे रहूँगा मैं..?' वो बड़ी देर तक रोता रहा था और वो जैसे कार्तिक के साथ मिलकर हँसती थी, उस दिन कार्तिक के आँसुओं के साथ न चाहते हुए भी उसके भी आँसू बहते रहे थे।

कैसा संबंध था?साथ हँसाता था, साथ रूलाता था। कार्तिक उसे स्थिर दृष्टि से देखता रहा था, फिर बोला था–'मुझे अपनी जिम्मेदारी का

अहसास है। मैं आपको बीच भँवर में नहीं छोड़ सकता। मैंने पहले भी आपसे कहा है। आप भवेश भैया से प्यार करती हैं, उनके बगैर नहीं रह सकती तो ठीक है, पर जब भवेश भैया से आपका संबंध सामान्य नहीं हो जाता, मैं इंतजार करूँगा।' कार्तिक चला गया था। उसकी तड़प, उसकी आँखें सब उसे आज भी याद है। ठीक कहा था उसने–'अब कभी यहाँ नहीं आ पाऊँगा, आपको नहीं देख पाऊँगा।' कार्तिक फिर नहीं आया। इन वर्षों में उसके दु:ख में कार्तिक का भी दु:ख शामिल रहा है।

नहीं भूली वो कार्तिक को। कार्तिक का क्या होगा?इस रिश्ते ने तो आरती को जुनून बना दिया था। हाँ, जूठन। ये सच है कि भवेश ने कभी अपने मुँह से नहीं कहा, पर क्या सब कुछ मुँह से ही कहा जाता है। उस दिन...हाँ! उस दिन...जब वो भवेश को खाना परोस रही थी और टी.वी. पर वो सीरियल...उसी दिन तो वो आत्मा तक को छलनी कर देनेवाला सच उजागर हुआ था। जिसकी लपटों की आँच अब भी कभी–कभी उसे तपा जाती है। सीरियल का वह सीन। एक स्त्री की मंदिर से गुहार लगाती आवाज....'–अब कौन–सा मुँह लेकर घर जाऊँ भगवान्! कौन–सा मुँह लेकर। मुझ 'जूठन' को मेरे पति अब कैसे स्वीकार करेंगे। मुझे अब जीने का कोई अधिकार नहीं। मैं अब अपने पति के लायक नहीं... मैं जूठी हो चुकी हूँ।' उसने अकचकाकर भवेश की तरफ देखा था, भवेश की नजरों में व्यंग्य और घृणा स्पष्ट थी। वो वहाँ रुक नहीं सकी थी। बिस्तर पर जाकर तकिये में मुँह छिपा लिया था।

'जूठन'...'जूठन'। ये एक शब्द उसके पूरे वजूद पर भारी हो गया था। भवेश उसे 'जूठन' समझते हैं। रोते–रोते उसकी हिचकियाँ बँध गयी थीं। सिर में दर्द होने लगा था। लेकिन वही 'जूठन' क्यों है, भवेश क्यों नहीं?अगर कभी कार्तिक अपनी पत्नी को आरती की बात बता दे, तो क्या उसकी पत्नी कार्तिक को 'जूठन' समझकर त्याग देगी?वो तो माफ कर देगी न?भला एक पत्नी और कर भी क्या सकती है। उसने ही क्या कर लिया था, जब भवेश ने बाहर एक नहीं कई–कई रिश्ते बनाये थे। करने को रह ही क्या जाता है?अब ये जूठन का ठप्पा। भवेश को कहाँ जूठन माना था उसने। न कार्तिक जूठन है, न भवेश।

लेकिन आरती...!वो तो स्त्री है। उसके लिए पैमाना अलग है। तभी तो भवेश ने उसे अपनी जिंदगी से निकाला है, अपने घर से नहीं, उनके बच्चों को उसकी जरूरत है। बच्चों का ख्याल आते ही उसने अपनी आँखें खोल दीं। देखा कमरे में अँधेरा था। उठकर बच्चों के कमरे में गई और बत्ती जला दिया। देखा, बच्चे सो रहे थे। बच्चों ने छोटी उम्र से ही भवेश को अलग सोते देखा था। बच्चे शुरू में जरूर उसके साथ सोते थे, पर किशोर होने पर वो दोनों अपने पढ़ाईवाले कमरे में ही सोने लगे थे। सीरियल देखकर आये होंगे और उसे सोता देख जगाया नहीं होगा और अपने कमरे में आकर सो गये होंगे। उसे हँसी आ गई थी। बच्चे तो बच्चे ही ठहरे। भला बड़ों की दुनिया की कारगुजारियों की अभी समझ ही कहाँ होनी थी। नेहा की चादर हमेशा की तरह शरीर पर नहीं थी। चादर अप्पू के ही चारों तरफ लिपटी पड़ी थी, जैसे समाज की सुरक्षा व्यवस्था। नेहा स्त्री के रूप में जन्मी थी, उसे समाज का सुरक्षा कवच प्राप्त नहीं था, पर अप्पू को पुरुष रूप में जन्म लेने का पूरा फायदा था। नेहा को घाटे में रहना था, अप्पू को नहीं। जैसे उसे जूठन होना था, भवेश को नहीं। सच!सावन के अंधे को हर तरफ हरा ही हरा दीखता है।

तभी तो आज उसे ऐसे ख्याल आ रहे हैं। पहले भी तो अप्पू नींद में चादर में लिपटा रहता और नेहा को बार–बार चादर उढ़ानी पड़ती थी उसे। रात में कई बार उठती थी वो इसकी खातिर। कहीं नेहा को ठंढ न लग जाए। उसने धीरे से चादर खींचा और नेहा को उढ़ा दिया। उसे प्यास लग रही थी। रसोई की तरफ बढ़ी तो देखा भवेश कमरे में लेटे कोई पत्रिका पढ़ रहे थे। कुछ पल खड़ी उन्हें देखती रही थी। जिंदगी ने उसे कितने रंग दिखाये। भवेश को टूटकर चाहा। फिर उनकी बेवफाई। उसके बाद भी चाहत खत्म नहीं हुई। फिर कार्तिक। उसका जाना। भवेश से खाने का उलाहना। उसका नौकरी करना। कार्तिक का फोन करना। उसका त्याग देना। इन ख्यालों के साथ वो आगे बढ़ गई थी। कार्तिक से मिलने का उसका मन करता था, पर क्या करती मिल के। कार्तिक के दाम्पत्य जीवन में हलचल नहीं मचाना चाहती थी। आज भी सोचती है क्या कार्तिक अभी अपनी पत्नी के बगल में लेटा उसे याद करता होगा?शायद हाँ! या फिर ना! और कभी अगर किसी मोड़ पर कार्तिक मिले और पूछ ले कि उसके संबंध भवेश से अब कैसे हैं तो क्या जवाब देगी?एक सच बताकर तो भवेश का चैन बर्बाद किया, दूसरा सच बताकर कार्तिक को अपराधबोध के अँधेरे में नहीं धकेल सकती।

पर कार्तिक तो उसे जूठन नहीं मानता। वो तो उससे ब्याह करने को तैयार था, बच्चों समेत। चलती हुई वो फ्रीज के पास आ गई है। इस त्रिकोण के तीन कोण। भवेश। अपने नियम। खुद के संबंधों के बावजूद आरती का एक संबंध भारी पड़ गया। लेकिन भवेश ने जिन स्त्रियों से संबंध बनाये थे, वो भी तो किसी की पत्नी थी। किसी की जूठन?या फिर किसी की होनेवाली पत्नी। जिन्हें भवेश ने जूठन बनाया?कार्तिक! भावनाओं में बहने के साथ ही जिम्मेदारी का अहसास और आरती! इन दो पुरुषों से अलग थी उसकी जद्दोजहद, उसकी यातना।

दिन–रात घर की जिम्मेदारियाँ सँभालते रहने के बावजूद रोटी का ताना। दिन बीत रहे थे और गले में जाता रहानिबाला भवेश के उपहास में लिथड़े होने की याद दिलाता था। रोने–बिसुरने झींकने की भी सीमा थी। एक दिन उसने प्राइवेट स्कूल में शिक्षिका की नौकरी कर ली थी। अपना राशन, अपने जरूरतें पूरी हुईं तो दंश कम हुआ, पर गया नहीं। उसने उस दंश के साथ आगे बढ़ना सीख लिया। हाँ, ये जरूर था कि हाड़–मांस की ही बनी थी, पत्थर की नहीं। पर घर के काम, अप्पू–नेहा की देखभाल, मान–मनुहार और स्कूल के बाद अपने लिए वक्त ही कितना मिलता था। व्यस्तता ने जिंदगी आसान कर दी थी। अब मोड़ पर पहुँच गई है, जहाँ भवेश के लिए कर्तव्य बचे हैं। और बची है शुभेच्छाएँ। मन में कोई और भाव बाकी नहीं रहा। इतना तरसी है कि अब प्यास ही नहीं रही। अब तो भवेश चाहें भी तो रिश्ता नहीं जुड़ सकती। रिश्ता! रिश्ते तो मन के होते हैं। मन ही तो सच होता है और सब झूठ।

हाँ, भवेश खुश रहें। आज भी उनके लिए दिल दुआ करता है। और दुआ करता है मिसेज हालदार, मिसेज कोहली और मिसेज दूबे के लिए। उनके बिखरे घर और टूटे स्वाभिमान के लिए। समर्पित पत्नियों को भी सुख नहीं, शुकून नहीं। जब–तब अपमान की खुबी किरचों से लहू रिस आते हैं। आरती गवाह है। इन लोगों ने तो आरती की तरह अपराध भी नहीं किया है....। उसने फ्रीज से निकालकर बोतल मुँह से लगा लिया था, पर दिल की तपन को ठंढक नहीं पहुँच रही। पूरी बोतल खाली हो चुकी है।

लघुकथा

आखिर क्यों : मेरी दृष्टि में

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मोदी
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
सुलतानगंज, भागलपुर

आखिर क्यों?सफाली समग्र अंगिका विकास संस्थान भागलपुर से 2014 में प्रकाशित 80 पृष्ठों का एक ऐसा पर्यावरणीय उपन्यास है, जिसके माध्यम से बहुमुखी प्रतिभावान उपन्यासकार अजीत कुमार शांतजी ने पर्यावरण के प्रति न केवल मानव के कठोर रवैया को ही प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है, वरन् प्राकृतिक आपदाओं के कारण होनेवाली तबाही के जिम्मेवार भी मानव को ही ठहराया है। शांतजी की कई कृतियाँ, जैसे–गंगा विलाप, जिंदगी और तूफान (विचारात्मक बिन्दु), प्रशांत जीवन दर्शन और आध्यात्मिक चिंतन को मुझे देखने का सुअवसर मिला है। इन सारी कृतियों के माध्यम से शांतजी ने अमन–चैन कायम करने, सभ्यता को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। वाकई शांतजी सरल स्वभाववाले मृदुभाषी एवं साहित्यिक जीवन जीनेवाले साहित्यकार हैं। ये न केवल अध्यात्म से दिलीलगाव रखते हैं, वरन् जीवन में उतारते हैं। ये साहित्य के माध्यम से नवराष्ट्र के निर्माण हेतु अलख जगा रहे हैं।

वास्तव में, एक साहित्यकार व कवि सत्य का ज्ञाता, सौंदर्य का स्रष्टा और भविष्य का द्रष्टा व वक्ता होता है। साहित्य न केवल समाज का दर्पण है, वरन्! दर्शन भी है। आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री ने कवि धर्म का बोध कराने के लिए नसीहत देते हैं कि–

अगर हाथ में है कलम जिंदगी लिख,
नहीं काम तेरा है परचम उड़ाना।

इन्हीं पंक्तियों के परिप्रेक्ष्य में शांतजी ने वर्तमान परिवेश न केवल जीवंत तस्वीर ही खींची है, वरन् समस्याओं के समाधान हेतु कर्तव्य का बोध भी कराया है। उन्यासकार शांत जी में मानवीय, सामाजिक एवं राष्ट्रीय संवेदना है, फलस्वरूप आमजन के दर्द और वर्तमान कुव्यवस्था से चिंतित होना स्वाभाविक है। बकौल–

बदल रहे हैं यहाँ सब रिवाज क्या होगा,
मुझे ही फिक्र है कल का समाज क्या होगा।
–अशोक मिजाज

उजड़े चमन में आई खिजाओं की शाम अब,
आये बहार फिर से करो इन्तजाम अब।
–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मोदी

उपन्यासकार शांतजी ने प्रस्तुत समीक्ष्य उपन्यास के माध्यम से आज के सच को जीवंत तस्वीर की तरह प्रस्तुत किया है। यूँ तो उपन्यास को अंग्रेजी में नोवेल (दवअमस) अथवा पिबजपवद कहते हैं। पिबजपवद का शाब्दिक अर्थ ही काल्पनिक कथा है। यह अलग बात है कि एक कुशल उपन्यासकार अपने काल्पनिक पात्रों, स्थानों, प्रसंगों व कथाओं के माध्यम से कुछ तथ्य को रखना चाहते हैं, जो सृजनात्मक है। साहित्य के विविध विधाओं में नाटककार की तरह उपन्यास भी एक ऐसी विधा है,जो लोकरंजन करते हुए सच से रू–ब–रू कराता है और सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

आखिर क्यों?उपन्यास के माध्यम से शांतजी ने ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण के साथ ही जंगलों की कटाई मुख्यतः हमारे पर्यावरण को समवेत रूप से प्रभावित करता है, जिसका सीधा प्रभाव जन जीवन पर पड़ता है। यही कारण है कि सभी प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ प्रतिक्रिया स्वरूप ही होता है।

संक्षेप में उपन्यासकार शांतजी ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से पर्यावरण को प्रदूषित न करने की नसीहत देते हैं, साथ ही पर्यावरण संरक्षण हेतु दृढ़ संकल्पित होने की प्रेरणा देते हैं। ताकि हम मानव का जीवन सुखमय हो सके। साथ ही, सांस्कृतिक गंगा बहाने के लिए भी प्रेरित करते हैं, ताकि विश्व में अमन–चैन कायम हो सके और मानवीय मूल्य स्थापित हो सके। उपन्यासकार का उद्देश्य द्रष्टव्य है–

फिर भगीरथ को यहाँ अब बुलाना चाहता हूँ
है जहाँ सहारा वहाँ गंगा बहाना चाहता हूँ।
बागवाँ बनके हम इसचमन के लिए
काम मिलकर करेंगे वतन के लिए।

वाकई, शांतजी सरल स्वभाव वाले, मृदुभाषी एवं साहित्यिक जीवन जीनेवाले साहित्यकार हैं। ये अध्यात्म से न केवल दिलीलगाव रखते हैं, वरन् उसे जीवन में उतारते हैं।

आखिर क्यों?उपन्यासकार शांतजी की उदार साधना बनी रहे, ताकि सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के आधार पर साहित्यिक सर्जना होती रहे और नवसाल का निर्माण हो सके। यही कहते हुए अपनी बात को विराम देता हूँ कि–

काम कुछ ऐसा करो जो हो सिखाने के लिए
इक नया इतिहास रच दो इस जमाने के लिए।
शांतजी को बहुत–बहुत साधुवाद!

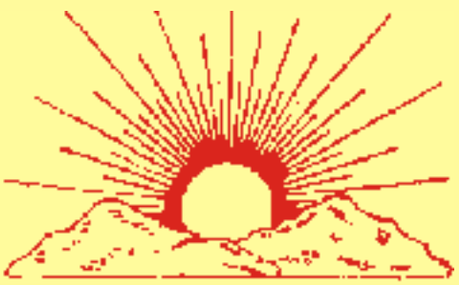

समीक्षा

उसने कहा था : सौ साल का सफर

डॉ. अरुण कुमार वर्मा
सिरमौर, रीवा (मध्यप्रदेश) मो0–09754128757

'उसने कहा था' कहानी चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित 1915 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी प्रथम कहानी की दौड़ में तो नहीं रही, परन्तु परिनिष्ठित कहानियों की गणना में इसका नाम अवश्य लिया जाता है। यह कहानी अपने सफर में सालों के शतक पार करने की दहलीज पर है। पड़ाव शब्द का प्रयोग मैं इसलिए नहीं करना चाहता; क्योंकि यह हर समय में निरंतर गतिशील रही है। किसी भी समय इसमें ठहराव नहीं आया। सौ साल पूरे होने पर किसी कहानी को पढ़ने और उसपर चर्चा करने का अवसर कम ही कहानियों को प्राप्त होता है। उस दौर की कहानियों में शायद ही कोई कहानी इतना कालजयी होगी। यह एक कहानी ही नहीं, बल्कि जीती जागती कलाकृति है। सामान्य जनमानस में गुलेरी जी की तीन कहानियों (सुखमय जीवन, बुद्धू का काँटा एवं उसने कहा था) की ही चर्चा होती है। अभी हाल में शिक्षा भारती से सुरेश सलिल द्वारा संकलित 'उसने कहा था और अन्य कहानियाँ' संकलन प्रकाशित हुआ है, जिसमें 'उसने कहा था' के अलावा 22 अन्य कहानियाँ संकलित हैं।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी (7 जुलाई 1883–12 सितंबर 1922) पुरातत्व के मान्य विद्वान थे, किन्तु कहानी और निबंध के क्षेत्र में इनका अन्यतम स्थान है। 'कछुआ धरम' और 'मारेसि मोहि कुठाँव' इनके चर्चित निबंध हैं। इसके अतिरिक्त धर्म, ज्योतिष, पत्रकारिता व मनोविज्ञान जैसे विषयों पर इनकी गहरी पैठ थी। ये कुछ समय तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग में प्राचार्य भी रहे। इनकी अन्य रचनाओं को छोड़ दिया जाए तो 'उसने कहा था' सिर्फ एक कहानी ही इनकी प्रतिभा और परिचय के लिए पर्याप्त है। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी लिखते हैं–'केवल एक कहानी के आधार पर संपूर्ण साहित्यिक ख्याति इस संदर्भ में देखी जा सकती है, जिसका समानांतर उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलेगा।' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ0 170)

गुलेरी जी की परपोती माधवी शर्मा गुलेरी का संस्मरण 28 दिसंबर, 2014 के रसरंग में 'याद गली' कॉलम में उन्हें और उसने कहा था, को याद करते हुए प्रकाशित हुआ था। यह संस्मरण मुझे 'उसने कहा था' को पढ़ने और वर्तमान में उसकी पड़ताल के लिए प्रेरित किया। स्नातक के पाठ्यक्रम में पहली बार इस कहानी को मैंने पढ़ा था। लोगों से इसके विषय में सुनता, परन्तु उस दौर में मैंने इसे इतने विस्तृत फलक पर महसूस नहीं किया था, जितना अब कर रहा हूँ। इस लेख को लिखने से पूर्व मैंने इस कहानी को कई बार पढ़ा। हर बार नये भाव एवं विचारों का उन्मेष मेरे अंदर हुआ और हर बार नई कहानी का एहसास हुआ। इसकी चर्चा मैंने अलग–अलग ऐज ग्रुप के लोगों से की। पुरानी और नई पीढ़ी के लोगों ने कहीं–न–कहीं इस कहानी से अपना जुड़ाव बताया। ऐसी कम ही कहानी होगी, जो प्रकाशन से लेकर आजतक किसी भी पीढ़ी के मानक और माँग के विपरीत हो। किसी कहानी के कालजयी होने का इससे बेहतर प्रमाण और क्या हो सकता है।

प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई यह कहानी एक प्रगतिशील कहानी है। अपने समय की कहानियों की तुलना में रचना विधान एवं शिल्प की दृष्टिकोण से बहुत आगे है। गुलेरीजी प्रगतिशील लेखक थे। वे परंपराओं में न बँधते हुए विवेच्य कहानी के द्वारा दुखान्त कहानी की सृष्टि की, जिसमें युद्ध के आलोक में प्रेम और करुणा की धारा प्रवाहित होती रहती है। स्वच्छंदतावाद की शुरुआत हिन्दी साहित्य में 1916 से मानी जाती है, परंतु इस कहानी में स्वच्छंदतावाद की झलक देखने को मिलती है। पूरी कहानी में प्रेम का स्वर्गीय स्वरूप भी झाँक रहा है। कहानी में कहीं भी प्रेम शब्द अभिव्यक्त नहीं हुआ है, परंतु मनोवैज्ञानिक रूप से उसे स्थापित कर लेखक अपनी कला चातुर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक बारह वर्ष का लड़का और आठ वर्षीय लड़की एक दुकान पर मिलते हैं। दुकानदार के दूसरे से व्यस्त होने के कारण दोनों में आपसी परिचय होता है। दोनों अपने मामा के यहाँ आए हैं। दुकान से सौदा लेकर दोनों साथ ही घर के लिए निकलते हैं। लड़का उससे पूछता है–'तेरी कुड़माई हो गई है?' लड़की आँखें चढ़ाकर धत्त करके भाग जाती है। दूसरे तीसरे दिन इनकी मुलाकात सब्जीवाले या दूधवाले के यहाँ हो ही जाती है। लड़का चिढ़ाने के लिए पूछ लेता–'तेरी कुड़माई हो गई है?' उत्तर में वही धत्त मिलता। एक दिन लड़के की संभावना के विपरीत उत्तर मिला–'हाँ, हो गई।' 'कब?' देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू। लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया। एक छावड़ीवाले की दिनभर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिये। सामने जाती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे होने की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा। लड़के का यह व्यवहार प्रेम की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि निर्मित करता है।

विवेच्य कहानी प्रकाशन से लेकर आज तक बहुतायत रूपों में पढ़ी जाती रही है। इसमें जहाँ एक ओर युद्ध की विभीषिका, शौर्य और बलिदान को प्रदर्शित किया गया है, वहीं दूसरी ओर इस शौर्य और बलिदान के आवरण के बीच उदात्त प्रेम को प्रदर्शित करती है, जिसमें निर्लज्जता के साथ पुकार और कराह नहीं, बल्कि त्याग और बलिदान के साथ पूर्ण समर्पण है। यहाँ 'मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं' की उलाहना नहीं, बल्कि सिर्फ त्याग ही है और यही त्याग कहानी की मुख्य धारा बन गया है। इसमें भारतीय संस्कृति की अकथ कहानी कही गई है, जो उच्च आदर्श को प्राप्त करती है। लौकिक प्रेम की बहुत सारी मान्यताओं को तोड़ते हुए कहानी का मुख्य पात्र लहना सिंह जब यह जानता है कि उसकी प्रेमिका उसके यार की बीबी है, तो उसका प्रेम और गहरा जाता है। यही सृष्टि गुलेरीजी को रचनाकार की ऊँचाइयों पर स्थापित कर देती है। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं–'इसमें निहित त्यागमय प्रेम का आदर्श भारतीय संस्कृति की उदारता के अनुकूल है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. नगेन्द्र, पृ0 514)

कहानी में स्वस्थ स्त्री विमर्श की झलक मिलती है। वर्तमान स्त्री विमर्श, जहाँ दैहिक प्रेम की अतिशयता में उलझता दिखता है, वहीं इसमें भारतीय प्रेम के सच्चे स्वरूप को दर्शाते हुए दैहिक प्रेम को नकारा गया है। प्रेम स्वार्थ और लालसा पर टिका नहीं, बल्कि सेवा और समर्पण पर टिका है। यदि उसमें समर्पण नहीं, तो वह प्रेम नहीं, बल्कि छलावा है। इसके माध्यम से गुलेरीजी प्रेम में गढ़ी गई बहुत सारी मान्यताओं को तोड़ते हुए आदर्श प्रेम की स्थापना की है और ऐसा प्रेम जिसे हर भारतीय मानस ने किसी न किसी रूपों में स्वीकार किया है। कहानी में लहना सिंह का निष्काम और शांत प्रेम,

जो किसी भी हलचल से दूर समर्पण के धरातल पर नारी के प्रति सम्मान का भाव और उसके सम्मान को ऊँचाई प्रदान करता है। वह अपनी प्रेमिका को मत्था टेकता है, जिसके सम्मानपूर्ण आचरण की अभिव्यक्ति है। लहना सिंह सूबेदार से कहता है–'होरों को चिट्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।' लहना सिंह का यह नारी सम्मान को तो दर्शाता ही है, साथ ही असीम प्रेम को भी दर्शाता है। प्रेमिका के द्वारा कहा गया–'उसने कहा था' वाक्य लहना सिंह के कर्तव्य एवं जीवन का एक वाक्य बन जाता है। कहानी के इस प्रेम में कहीं भी स्थूलता नजर नहीं आती, परन्तु कहानी की मुख्य भावधारा में निश्छल प्रेम हिलोरें ले रहा है। कहानी में यह धारणा भी प्रबल हो उठती है कि प्रेम कभी मरता नहीं है। लहना सिंह बचपन की सारी घटनाओं को भूल गया था, परंतु जब सूबेदारनी से मुलाकात होती है, तो प्रेम की सुषुप्तावस्था पुनः जाग्रत हो उठती है। प्रेम की उत्कृष्टता ही प्रेमिका के प्रति सूबेदार हजारा सिंह और पुत्र बोधा सिंह की रक्षा के लिए लहना सिंह को प्राणों के बलिदान हेतु प्रेरित करता है। प्रेम की पराकाष्ठा न होती, तो शायद वह प्रेमिका के वचन की रक्षा हेतु इतना बड़ा बलिदान न कर पाता–'तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े के लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तहखाने पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।'

कहानी में युद्ध और प्रेम की अविरल धारा एक साथ प्रवाहित हुई है। युद्ध में जहाँ लहना सिंह जर्मन पलटन साहब और सिपाहियों को मारकर अपने कर्तव्यों की पूर्ति करता है, वहीं दूसरी ओर प्रेमिका के पति और बेटे के जीवन की रक्षा कर प्रेम का ईश्वरीय स्वरूप की स्थापना करता है। कहानी में अभिव्यक्त प्रेम राम की शक्तिपूजा ही राम के द्वारा जनक वाटिका में सीता के प्रथम दर्शन से उत्पन्न प्रेम को शक्ति की उपासना के लिए प्रेरित करती है और कमल के चोरी चले जाने पर आँख को अर्पित करने को तैयार होते हैं। तुलसीदास खंड काव्य में रत्नावली के प्रति तुलसीदास के प्रेम की प्रगाढ़ता ही तुलसीदास बना देता है। उसी तरह से 'उसने कहा था' में प्रेम की गहराई ही लहना सिंह को प्राणों के बलिदान की प्रेरणा देता है और उसका मानवीय प्रेम आध्यात्मिक प्रेम की धरातल को प्राप्त होता है।

गुलेरीजी प्रगतिशील लेखक थे। वे किसी मान्यता एवं परंपरा में बंधनवाले लेखक नहीं थे। उन्होंने उस समय प्रेम और वैवाहिक जीवन को एक साथ स्वीकार किया था, जिसे आज भी हम खुले मन से दर्शाने में समर्थ नहीं हो पाते हैं, परन्तु उन्होंने इतने सहज भाव से दर्शाया है कि वैवाहिक जीवन और प्रेम कहीं भी आड़े नहीं आता। 'रोती हुई सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।' यह वक्तव्य दोनों के प्रेम को दर्शाता है, परन्तु सूबेदारनी लहना सिंह से पति और बेटे के जीवन की भिक्षा माँगती है, जो उसके वैवाहिक पक्ष को मजबूत करता है। कहानी की यह अंतर्धारा वर्तमान की माँग है।

'उसने कहा था' कहानी कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टिकोण से सशक्त कहानी है। भाषा की कसावट और देशकालानुकूल भाषा का प्रयोग जहाँ इसकी विशेषता है, वहीं इसका कथ्य किसी एक समय सीमा में बँधकर रुका नहीं है। वह तो समय की सीमाओं को तोड़कर आगे बढ़ता रहा है। सौ साल के सफर में यदि कोई कहानी इतनी चर्चा में रही है, तो वह यही कहानी है। यह कहानी की भावभूमि वर्तमान में प्रासंगिक है और आनेवाले समय में भी रहेंगे। गुलेरीजी को यह अकेली कहानी ही साहित्य जगत में अमर बनाए रखने में समर्थ है।

लघुकथा

बर्थ डे पार्टी

प्रतिभा रामकृष्ण श्रीवास्तव
इंदौर (म.प्र.) 09826290436

आज रुद्र को अपने दोस्त सत्यम् की बर्थ डे पार्टी में जाना था, परन्तु जहाँ पार्टी थी, वह होटल रुद्र के घर से काफी दूर था। बिना बुलाये बच्चों की पार्टी में जाना रुद्र की मम्मी नीलिमा और पापा जय को अनुचित लग रहा था। परेशान होकर नीलिमा ने सत्यम की मम्मी से फोन पर बात की, तब उन्होंने रुद्र के मम्मी–पापा को भी पार्टी में आने का आग्रह किया और कहा जिन बच्चों के घर दूर हैं, उन सब बच्चों के मम्मी–पापा भी बर्थ डे पार्टी में आ रहे हैं।

जय और नीलिमा रुद्र को लेकर पार्टी में चले गये। बड़ी सुंदर सजावट थी। कपास से बर्फ का पहाड़ बना था एवं थर्मोकोल से सुन्दर गुडिया बनाकर पहाड़ के पास खड़ी थीं। थर्मोकोल से ही एक संतरी भी बनाया था, जो एक छोटी–सी खिलौना पिस्तौल लिये खड़ा था। सजावट देखकर रुद्र बहुत खुश हुआ। बहुत–से गुब्बारों से भी सजावट की हुई थी। जय और नीलिमा को ये सजाव बड़ी आकर्षक लगी। पार्टी में 5 से लेकर 12–13 साल तक के बच्चे थे।

नियत समय पर केक कटा, बच्चों ने तालियाँ बजाकर और गुब्बारे फोड़कर सत्यम को जन्मदिन की बधाई दी। परन्तु ये क्या?गुब्बारे तो खैर बच्चे ही फोड़ते हैं, परंतु बच्चों ने सुन्दर–सा पहाड़, दोनों गुड़िया और संतरी को भी देखते ही देखते तहस–नहस कर दिया। बच्चे तोड़–फोड़कर रहे थे और बच्चों के मम्मी–पापा उनकी इस हरकत पर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। नीलिमा सोच रही थी कि जिन बच्चों ने इतनी सुंदर सजावट मिनटों में तहस–नहस कर दी थी, तो क्या ये ही बच्चे बड़े होकर और अधिक हिंसक नहीं हो जाएँगे। इन बच्चों के अभिभावकों को चाहिए कि उन्हें अभी रोकें, हिंसा करने से अभी नहीं टोका, तो देर हो जाएगी। क्योंकि यही बच्चे बड़े होकर कार, बस, ट्रेन में आग लगाएँगे या तोड़फोड़ करेंगे। इस सजावट को हटना होटल के कर्मचारियों के काम का हिस्सा है। सुन्दर चीजों को तोड़–फोड़कर बच्चे बचपन से ही हिंसक हो सकते हैं।

समीक्षा

उधार की हँसी : एक दृष्टि

डॉ0 विद्या रानी, विभागाध्यक्ष
स्नातकोतर हिन्दी विभाग
ति.मां.भा.वि.वि.भागलपुर

सुधीर कुमार प्रोग्रामर अंगिका और हिन्दी साहित्यकार हैं। उनकी अंगिका कविताएँ जितना प्रभावित करती हैं, उनकी हिन्दी गजलें भी उतना ही प्रभावित करती हैं। उनकी संवदेना अपने परिवेश के प्रति सजग है और उसे अपनी सर्जनात्मकता के बल पर अपनी रचनाओं में उकेरने में कोई कोर कसर नहीं रखते।

सर्वप्रथम तो 'उधार की हँसी' शीर्षक ही आज के समाज में खोखलेपन को व्यक्त करता है। हम आंतरिक प्रसन्नता, संतोष या सद्भाव के कारण नहीं हँसते, वरन् चापलूसी करने के लिए दाँत निपोरते नजर आते हैं। जहाँ से दो पैसे की आस होती है, हम वहीं के लोगों को खुश करते नजर आते हैं। हमारे पेट में कुछ और तथा मुँह पर कुछ और रहता है। प्रोग्रामर जी जानते हैं कि लोग मनमानी करेंगे, सही राह पर नहीं चलेंगे, किन्तु समाज को सही दिशा में ले जाना साहित्यकारों का काम है, इसीलिए वे लिखते हैं–

हम खड़े हैं मुहब्बत की चौपाल पे
रुख सुधरते–सुधरते सुधर जायेंगे।

भारतवर्ष के साथ–साथ विश्व के रुख को सुधारने की कोशिश में प्रोग्रामर जी सारी दुनिया की स्थिति पर दृष्टि डालते हैं। उनकी गजलें पाठकों को आँखें खोलने में सफल हैं। राजनीति पर उन्होंने लिखा है–

'कौन देगा उसे सजा साथी
जिसने लूटा फकत मजा साथी'

फिर– 'कैसी अजीब दुनिया, कैसा है राज–काज
जो सैकड़ों का कातिल, उसके ही सिर पे ताज।'

राजनीति के अपराधीकरण पर ये दो गजलें बहुत खूब है। देश की स्वतंत्रता एवं विकास के लिए संयम और कर्मबल दोनों की आवश्यकता है, ये बात प्रोग्रामर जी बहुत ईमानदारी से समझते हैं। समाज में समानता की बात को कवि ने नये ढंग से रखा है, नेतागण सुविधा सम्पन्न हैं एवं जनता अभाव से ग्रस्त है, ऐसा कबतक चलेगा। इसी पर प्रोग्रामरजी लिखते हैं–

हो बड़े छोटे मुसाफिर चल रहे जो साथ में
आपके जैसा सबों की धाक होनी चाहिए।
जो जमीं पर खट रहा है, आपसे क्यों कट रहा है
आप रहबर हैं अगर तो ताक होनी चाहिए।

कवि कहना चाह रहे हैं कि उच्च वर्ग में होकर आप अलग न हो जाएँ, आपको गरीब–अमीर सबके साथ बराबर की दृष्टि रखनी चाहिए। क्योंकि–

कल भटकते थे सहारा माँगने जो
अब सदन में बोलते हैं बोल कुछ–कुछ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत आजतक भारतवर्ष ने जितने भी विकास किये हैं, वे सब के सब दूध की मलाई की तरह शहरी क्षेत्रों के अमीरों की सुविधा प्रदान करती जा रही हैं। हमारे गाँव और गाँव के लोग सब प्रायः वैसे ही हैं, जैसे थे, उनमें कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है।

गमों के सिवा गाँव में आज क्या है?
गुदामों में सारे पड़े कुछ सड़े हैं।

आतंकवादियों पर कवि का ध्यान कुछ इस तरह जाता है कि वे दुनिया को अपनी बहशी हरकतों से परेशान कराते जा रहे हैं। चरित्रहीन नकली लोगों के अंदर जो हबस है, उसके कारण बहुत सी नारियाँ विवश हैं, दुःखी हैं। लाज बचाने की चिंता है, पर मुँह पर ताला लगा हुआ है। देश में नारी की दुर्दशा पर प्रोग्रामर जी लिखते हैं–

'शिकायत भी करे कोई यहाँ अब कौन सुनने को
नजर में बेवफाई है ईमां भी स्याह काला है।'

फिर– 'कठघरे में न्याय पैसा–पैरवी पर
कल गया था जेल परसों बेल देखो।'

देश में समानता लाना कवि का उद्देश्य है, वे लिखते हैं–

'प्यासे खड़े हैं पास जल पिला सको पिला
हर झोंपड़ी में दीप इक जला सको जला।'
'स्वार्थ से हटकर दिला दे हक हमें जो
देश से परदेश पुख्ता नाम ढूँढ़ें।'

आतंकवादियों के खूनी आतंक से देश की साँसें विवश हैं, वे सिसक भी नहीं पातीं; क्योंकि जल्लादों के हाथ में खून से सना खंजर देखकर वे मूक हो जाती हैं। कवि को सबके हिस्से की आजादी की चिंता है। सब आजादी पायें और खुशहाल रहें, इसी कामना से व्यथित कवि तरह–तरह अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं। खेत–खलिहानों में बाजार में विदेशियों की जो धाक् जमती जा रही है, उसपर कवि की बड़ी पैनी दृष्टि है। उनका विचार है कि ये एड्स, वर्ड फ्लू जैसे रोग विदेशों से आये हैं और वहीं से महँगा डिब्बाबंद खाना भी आया है, जो हमारे देश को बर्बाद किये जा रहे हैं–

जानलेवा संग आये पश्चिमी मुल्कों से ही
पर बताहा लोग कहते खून के कतरे में है।

देश की दुर्दशा, विदेशियों की घुसपैठ, आतंकवादियों का भय एवं अमीर–गरीब की खाई सब पर कवि अपनी दृष्टि डाली है। हर गजल में एक चिंता, एक समस्या व्यक्त किया गया है, फिर कवि का अपना मन ठानता है कि चाहे जो हो, हम देश के जीवन मार्ग को सुनहरा अवश्य बनाएँगे। कवि को अपना मार्ग स्पष्ट दीख रहा है। कवि को विश्वास है कि–'जिंदगी के रुख सुधरते–सुधरते सुधर जाएँगे।'

प्रोग्रामरजी तो उनके साथ जाने के लिए व्याकुल है, जो तेज तूफान में देश की स्थिति को थामते हैं। अनिरुद्ध सिन्हा ने लिखा है–'गजलकार सुधीर प्रोग्रामर खूबसूरत दुनिया के लिए प्रार्थना नहीं करते, बल्कि खूबसूरत बनाने की कोशिश करते हैं।'

सत्य ही 'उधार की हँसी' की गजलें विकास और सुधार की धुन लेकर बढ़ी है। गजलकार संदेश देते हैं एक दार्शनिक की तरह

कि लोगों को क्या करना चाहिए?कवि आस का चिराग लेकर खड़ा है, समाज को, दुनिया को बदलने।

डॉ. ब्रह्मदेव नारायण लिखते हैं–'जीवन के कैनवास पर उभरते रंग और प्रतीकों के जरिये पाखंड को संकेतों के माध्यम से बयान करते संकलन की गजल अपने समय और परिवेश में अभिव्यक्त है।' यानी विविध भावों की विविध प्रकार से अभिव्यक्ति कर गजलकार सुधीर कुमार प्रोग्रामर एक सफल गजलकार के रूप में प्रतिष्ठित हो रहे हैं। भाव एवं कला दोनों दृष्टियों से इनकी गजलें सफल एवं आकर्षक हैं।

गजलों की कलात्मक सुदृढ़ता के संदर्भ में हीरा प्रसाद हरेन्द्र ने लिखा है–'रदीफो–काफिया का घूँघट उतार फेंकनेवाली चीज कुछ और भले हो, गजल नहीं हो सकती।' का पालन प्रोग्रामर जी ने पूरे संकलन में तत्परता से किया है।'

यानी गजल–छंदों के जो नियम हैं, उनका पालन गजलकार ने ईमानदारी से किया है, उसमें कोई गड़बड़ी नहीं है। आज ढेरों लोग छन्दों की बारीकी पर ध्यान न देकर मनमाने ढंग से कुछ लिखते हैं और आरोह–अवरोह से दूर करने की कोशिश करते हैं। किन्तु 'उधार की हँसी' का गजलकार का गजल के रदीफोकाफिया पर भी अधिकार है, यह एक बड़ी बात है।

प्रोग्रामर जी अंगिका और हिन्दी, जिसमें भी अपनी कलम जब चलाते हैं, तो पूर्णता के साथ ही चलाते हैं। एक विज्ञान के छात्र होकर साहित्य में इतना काम करना और पूर्णता से करना, प्रोग्रामरजी के बहुमुखी प्रतिभा को दर्शाता है। ये साहित्यकार, कवि, गजलकार और गीतकार भी हैं। कवि सम्मेलनों में इनकी उपस्थिति चार चाँद लगा देती है। मैं समझती हूँ कि भविष्य में प्रोग्रामरजी की और रचनाएँ हमें मिलेंगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि इनकी कलम ऐसे ही चलती रहे।

कविता :

इस बार नहीं

महिमाश्री
नई दिल्ली, 9910225441

एक दिन
तुमने कहा था
मैं सुन्दर हूँ
मेरे गेसू काली घटाओं की तरह है
मेरे दो नैन जैसे मद के प्याले
चौंककर शर्मायी
कुछ पल को घबरायी
फिर मुग्ध हो गयी
अपने आप पर
पर जल्द ही उबर गयी
फँसना नहीं है मुझे
तुम्हारे जाल में
सदियों से
सजती–सँवरती रही
तुम्हारे मीठे बोल पर
डूबती–उतराती रही
पायल की छन–छन में
झुमके, कंगन, नथुनी
बिंदी के चमचम में
भूल गयी
प्रकृति के विराट सौंदर्य को
वंचित हो गयी
मानव जीवन के
उच्चतम सोपानों से
और
तुमने छक के पिया
जीवन के आयामों को
पर इस बार नहीं भरमाओ
देवता बनने का स्वाँग
बंद करो
साथ चलना है, चलो
देहरी सिर्फ मेरे लिए
हरगिज नहीं

2. बेटियाँ

पिता
गर बेटियाँ हैं तुम्हारे स्वाभिमान
फिर क्यों
समाज के विद्रूपताओं से
भयभीत होकर
रोकते हो उसकी हर उड़ान
बनाने क्यों नहीं देते उसकी
स्वयं की साहसी पहचान
असुरक्षा के डर से
देना चाहते हो उसको
किसी का साथ
खर्च कर लाखों लाते हो
छानबिन कर एक जोड़ी अदद हाथ
जो बनेगा तुम्हारी बेटी का आजीवन रक्षक
पर क्या होता है सही ये फैसला
हर बार
वक्त के साथ देख बेटियों की दुर्दशा
क्या नहीं होते स्वयं परेशान
पिता
बस एक विनती है हमारी
चिंता और व्यग्रता से बाहर निकल
दो निर्णय का अधिकार
भरो उनमें साहस
दो उनकी उड़ान को दिशा
राह में मत रोको, मत टोको
बनो मार्गदर्शक
जबतक नहीं बनेगी साहसी
तबतक कभी भी
कहीं भी नही रहेगी सुरक्षित
समाज में बेटियाँ....।

लघुकथा

एक भूली दास्ताँ प्यार की

अखिलेशचन्द्र श्रीवास्तव
कल्याण महाराष्ट्र
9321497415

अभी कल ही तो ऊनी बक्सा खोला था धूप दिखाने को...डोमर गोली डालने को और कपड़े फिर से सहेजकर रखने को कि अचानक सामने आ गयी उस कोट की बटन होल में लगी वो गुलाब की मुरझाई कली, जो तुमने लगाई थी वहाँ प्यार से। हमारे प्यार की निशानी वो कली सूखी ही सही, पर तमाम यादें और दर्द हरा कर गयी। वो तुमसे बिछुड़ने का दर्द, जो जुड़ गया था। तुम्हें खोने के दर्द से तुम्हारी डबडबाई आँखें आँसुओं से भरा चेहरा कपकपाते होंठ तुम बस मुझसे लिपटकर रोये जा रही थी। मैं तुम्हें समझा रहा था, पर मेरे आँसू भी कहाँ थम रहे थे। बी.ए. फाइनल की परीक्षाएँ समाप्त हो गई थीं, हम अपने आनेवाली खुशियों में खोए रहते और सपने बुनते। हम परस्पर शादी कर अपना एक नीड़ बनाएँगे, जहाँ सपने बसेंगे, जहाँ प्यार बसेगा। हम दोनों के घरवाले परिचित थे। हमारे पिता आपस में गहरे दोस्त और माँ सहेलियाँ थीं। मैं बचपन में साथ ही खेलकर बड़ा हुआ था। हम अन्य बच्चों के साथ घर–घर खेलते थे। चारपाइयाँ खड़ी कर चादरों को तानकर घर बनाते थे। तुम सदा मेरी पत्नी बनती और खेल में ही रात हो जाने पर मुझसे खूब प्यार करती। एक दिन जिद करके जब सुनीता मेरी पत्नी बन गयी, तो तुमने हंगामा कर दिया और उसे हटाकर स्वयं आकर जम गई। हमारे घरवाले भी हमारी दोस्ती और प्यार को समझते थे और मूक समर्थन करते थे। तुम्हारी माँ कुछ भी व्यंजन बनाती तो मुझे अवश्य देतीं। मुझसे बहुत स्नेह करती थी। इस सबसे हम दोनों को विश्वास हो गया था कि हम दोनों की शादी अवश्य होगी और हम निश्चिन्त थे।

उस दिन अचानक तुम्हारे भाई ने एक पुर्जी मुझे दी, जिसमें तुमने यूनिवर्सिटी के लान पर मुझे अपने मिलने के स्थान पर बुलाया था। मेरे पहुँचते ही तुम दौड़कर आयी और मुझसे लिपटकर रोने लगी। मैं हैरान, अरे! क्या हुआ?तुम ठीक तो हो... तुमने सिसकते हुए कहा कि हमारी शादी एक आर्मी कैप्टन से तय हो गयी है और अगले माह सम्पन्न होगी। पर मैं तो तुमसे ही शादी करूँगी। मैं मर जाऊँगी तुम्हारे बिना। इस खबर ने तो मेरे भी होश उड़ा दी। अचानक हुए इस विस्फोट ने हम दोनों की प्यारी दुनिया तहस–नहस कर दी थी। मैं भी आँसुओं में डूब गया। उसे जोर से छाती में भींच खूब रोया। मैं मूक और पत्थर की मूर्ति बन गया। क्या कहूँ, क्या करूँ?कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बड़ी देर बाद उसने मौन तोड़ा। मैं तुम्हें अपना पति न जाने कब से मान चुकी हूँ। मैं अब किसी को पति नहीं मान सकती। आप मुझे लेकर कहीं भाग चलें। मैं तुम्हारे साथ कैसे भी, कहीं भी रहने को तैयार हूँ। मैंने कहा–अभी तो मैं कुछ करता धरता नहीं, तुम्हें कहाँ रखूँगा, क्या खिलाऊँगा?वह बोली–हम मेहनत मजदूरी कर लेंगे, पर रहेंगे साथ।

मैं बड़े पेशोपेश में पड़ गया। उसकी बातें और प्यार सही था, पर हम दोनों के उच्च शिक्षित और अपर मिड्ल क्लास अच्छे खाते–पीते परिवार हमारे पेरेंट्स का हम दोनों पर विश्वास कि ये लोग केवल अच्छे दोस्त ही नहीं, अच्छे संस्कारी बच्चे हैं। मैं घर से पैसे गहने चुराकर उसके साथ भागने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। मैंने कहा–क्या कभी तुमने अपनी माँ को हमारे बारे में बताया, मेरा मतलब, हमारे प्यार और शादी के बारे में। वह बोली– आज सुबह ही बताया। मम्मी भी परेशान हो गई। बेटा! अबतक क्यों नहीं बताया था?हम तो तुम्हें केवल दोस्त समझते थे। बात इतनी दूर तक पहुँच गई। यह तो बहुत गड़बड़ हो गई, पर अब तुम्हें उसे भूलना ही होगा। शादी तय हो चुकी है। हम जबान दे चुके हैं, अब कुछ नहीं हो सकता। मेरी बेटी! उसे भूल जाओ और अपनी शादी की तैयारी में हाथ बँटाओ। मरी हुई मेरी आवाज निकली और तुम्हारे पापा... मेरे पापा अपने वचन से बँधे हैं। उनका भी माँ के द्वारा आदेश है कि मैं सब कुछ भूल जाऊँ।

तुम अगर मुझे प्यार करते हो तो दो दिन का समय है, मुझे लेकर कहीं भी भाग चलो। फिर परीक्षा हो जाएगी और मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा। मेरा दिमाग सुन्न हो रहा था। अचानक आई मुसीबत और उसका घर से भागने का हल, कुछ समझ नहीं आ रहा था। दोनों घरों की सामाजिक प्रतिष्ठा और हमारे पेरेंट्स का ख्याल आ रहा था कि क्या वे कहीं मुँह दिखाने लायक रहेंगे। इसी उधेड़बुन में मुझे चुप देख वह बोली–'अरे! कुछ बोलिये?' क्या बोलूँ, क्या सही होगा?उसे शायद गुस्सा आ गया। वह बोली– लड़की होकर मैं हिम्मत कर रही हूँ और तुम मर्द होकर कमजोर पड़ रहे हो?मुझे खोकर बहुत पछताओगे। यह याद रखना। मौका था, पर तुमने हिम्मत नहीं दिखाई। उसने वहीं से एक गुलाब की कली तोड़ मेरे कोट के बटन होल में लगा दी। समझो, मैं हूँ। सँभालकर रखना हमेशा। मैं अब जा रही हूँ। याद रखना, बस दो दिन। यदि विचार बने और हिम्मत हो तो संदेशा देना, मैं दौड़कर आऊँगी तुम्हारे पास हमेशा के लिए और आँसुओं से भरा चेहरा लिये वह तेजी से चली गई। मैं लान की घास को घूरता बहुत देर तक स्तब्ध बैठ रोता रहा और अपने मुकद्दर को कोसता रहा। हाँ, मैं अपेक्षित हिम्मत नहीं जुटा पाया। या कमजोरी पर दो दिन बीत जाने पर उसकी सगाई हो गई, फिर शादी हो गई और मैं कुछ नहीं कर पाया। उसकी शादी की सारी भागदौड़ भी मुझे ही करनी पड़ी; क्योंकि उनके यहाँ कोई करनेवाला नहीं था।

शादी की रात वो सज–धजकर बारात के आने का इंतजार कर रही थी, चंद सहेलियों के साथ। मुझे आता देख वे इधर–उधर हो गई। मैंने कहा–क्या तुम मुझसे नाराज हो। उसने न में सिर हिलाया। मैंने कहा कि मुझे तुम्हारा भागने का प्रस्ताव ठीक नहीं लगा। उसने सहमति जताई। उसने कहा–जो हुआ, शायद ईश्वर की यही मर्जी थी और हम भाग्य से तो नहीं लड़ सकते। उसने कहा–एक ही प्रार्थना है, अब मैं किसी और को वरण कर रही हूँ, तो मुझे सच्चा ही रहने देना और कभी भी मेरे सामने मत आना, वर्ना मैं कमजोर पड़ जाऊँगी। उसके बाद मैंने दूर शहर में नौकरी कर ली और उससे कभी भी नहीं मिला। आज इस सूखी गुलाब की कली ने तो एक बार फिर उन यादों और दर्द के समंदर में मुझे डूबा दिया। सचमुच मैंने उसे खोकर सब कुछ ही तो खो दिया।

लघुकथा

लौट आईं खुशियाँ

डॉ0 नीतू सिंह
भागलपुर, मो0.–9472608550

ठाकुर साहब की कोठी का चप्पा–चप्पा खिलखिलाता रहता था, कण–कण मचल उठता था, हर ओर खुशियाँ लहराती रहती थीं, पत्र–पुष्प, तरु–लता, पशु–पक्षी सबकी युगलबंदियाँ देखते बनती थीं। कभी यहीं संपूर्ण परिसर प्रसन्नता में लहालोट रहता था।

ठाकुर साहब की कोठी का मुख्य द्वार विशाल था और द्वार के बीचोंबीच ठीक सामने सुन्दर–सा उद्यान था, जिसमें एक बड़ा–सा झरना और झरना के चारों ओर रंग–बिरंगे हँसते खिलखिलाते पुष्पों की लड़ी।इस उद्यान में रंग–बिरंगे बिजली के बल्ब भी लगे थे, जो संध्या होते ही विविध रंगों की रोशनी से जगमगा उठता था।इस उद्यान के दोनों किनारे आकर्षक झूले लगे थे।इसी झूले पर ठाकुर साहब की लाडली झूला करती थी।ठाकुर साहब की चार बेटियाँ और एक बेटे थे।चारों बेटियाँ पिता की लाडली थीं; पिता बड़े लाड़–प्यार से इनका लालन–पालन कर रहे थे, किन्तु इन बच्चों को माता का सुख–स्नेह नसीब न हो सका; क्योंकि बचपन में ही इनकी माँ परलोक सिधार चुकी थीं।

कोठी के प्रवेश द्वार के दोनों किनारे चहारदीवारी से सटे पेड़ों की कतार और उन पेड़ों पर बैठे विविध पक्षी के कलरव और बन्दरों का झुंड, जो एक डाली से दूसरी डाली पर उछल–कूद करते तथा बन्दर के छोटे–छोटे बच्चों की धमाचौकड़ी मन को बरबस आकर्षित करनेवाला था। आम, अमरूद, कटहल, लीची, अनार, बरगद, कदम्ब, मौलसिरी आदि अनेक पेड़ थे, जिनकी डालियों पर बैठे पक्षी, पवन के झकोरे के साथ झूला झूलते नजर आते।

कोठी के अंदर छोटा–सा तालाब भी था, जहाँ छोटी–बड़ी विविध मछलियाँ भी थीं।इन मछलियों को ठाकुर साहब की बेटियाँ बड़े प्यार से चारा खिलातीं और मछलियों की क्रीड़ा देख–देख मुग्ध हुआ करती थीं।कोठी में पशुधन की भी कमी नहीं थी।गाय, बकरी, कुत्ता, मोर, तोता, बन्दर–सब एक साथ खेलते, खाते और प्रसन्न रहते।ठाकुर साहब के बच्चों से सभी पशु–पक्षी चिर परिचित थे।ठाकुर साहब की बेटियाँ जब स्कूल से वापस आतीं, तो सभी पशु–पक्षी खुशी से चहक उठते।तोता तो अक्सर कंधे पर बैठ जाया करता था और मोर पंख फैला–फैलाकर फुदकने लगता।बंदर के बच्चे तो माथे के ऊपर से ही कूद–फाँद करने लगते।ठाकुर साहब की बेटियाँ भी पशु–पक्षी से बेहद प्यार करती थीं।कभी पुचकारतीं, तो कभी दुलरातीं और कभी गाय के पीठ पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरतीं तथा अपने टिफिन बॉक्स से निकाल कुछ–कुछ प्रेमपूर्वक खिलातीं।ठाकुर साहब को भी अपनी बेटियों के स्कूल से लौटने का इंतजार रहता और बेटियाँ भी आते ही दौड़कर पिता के गले से लग जाया करती थीं।शाम में उद्यान के पास अपने पिता और भाई के साथ झूले में झूलती और अपने स्कूल की सहेली एवं शिक्षक की बातें करतीं।

ठाकुर साहब अपनी सुन्दर, सुकोमल, सुशीला, सदाचारिणी एवं अनुशासित बेटियों से बेहद खुश थे।धीरे–धीरे बेटियाँ बड़ी होने लगीं और बेटियों का रिश्ता आना शुरू हो गया।ठाकुर साहब बड़े खुश थे कि प्रभु ने हमें पुण्य का सौभाग्य प्रदान किया है। एक–एक कन्या का विवाह एक–एक अश्वमेध यज्ञ के समान फल देनेवाला होता है, ऐसा सोचकर ठाकुर साहब एक–एक कर अपनी पुत्री का विवाह किया और विदाई की।

ठाकुर साहब का पुत्र अपने पिता का कारोबार, व्यापार सँभाला और अधिक समय बाहर ही रहता।अब ठाकुर साहब को अकेलापन महसूस होने लगा। बार–बार इन्हें अपनी बेटियों की याद आती और अंदर से झकझोरकर रख देती।ठाकुर साहब धीरे–धीरे वृद्धावस्था में प्रवेश कर चुके थे। अतएव स्वास्थ्य भी अनुकूल मालूम नहीं पड़ता, फिर अकेलापन का एहसास उन्हें अंदर ही अंदर कमजोर करता जा रहा था। पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, तरु–लता, पत्र–पुष्प सबके सब उदास–निराश जान पड़ते। एक तोता जो बड़े प्यार से ठाकुर साहब की बेटी का नाम पुकारा करता था, उसकी भी मृत्यु हो चुकी थी। ठाकुर साहब की कोठी में चहुँ ओर नीरव वातावरण मानो काटने को दौड़ता। कभी–कभार बारी–बारी से बेटियाँ अपने पिता से मिलने आया करतीं, पर पिता की हालत को देखकर बहुत दुःखी हो जातीं। देखते–ही–देखते ऐसा समय आ गया कि ठाकुर साहब बिस्तर पकड़ लिये। अब उठना–बैठना, चलना–फिरना कम हो चुका था। ठाकुर साहब की बेटियों ने आपस में मिल–बैठकर विचार किया कि सुयोग्य कन्या का चयन कर भाई का विवाह कराया जाए। घर में बहू के आगमन से हो सकता है पिता अपनी पुत्री की विदाई का गम भूल जाएँ। फिर ऐसा ही किया गया।बड़े धूमधाम से ठाकुर साहब के इकलौते पुत्र का ब्याह हुआ।

ठाकुर साहब के घर परी–सी सुंदर, सुकोमल पुत्रवधू का आगमन हुआ। पुत्रवधू प्रातः उठकर श्वसुर को प्रणाम करती, उनका पसंदीदा भोजन बड़े प्रेम से बनाकर श्रद्धा से खिलाती। शारीरिक सेवा करती और सुमधुर स्वर से ग्रंथपाठ कर सुनाती। सभी पशु–पक्षी से बेहद प्रेम करती और सबों का खूब ख्याल रखती। पशु–पक्षी भी घर में आये नए सदस्य से घुलमिल गये और इन्हें ठाकुर साहब की बेटियों की कमी (अभाव) नहीं लगी।ठाकुर साहब की पुत्रवधू के आने से घर में रौनक आ गई, फिर से पशु–पक्षी चहक उठे थे। बंदरों का उछल–कूद आरंभ हो चुका था, मोर नाचने लगे थे। गाय का बछड़ा कोठी में धमाचौकड़ी मचा रहे थे। कुत्ते के पिल्ले उद्यान में लगे झूले पर कूद–फान करने लगे।घर में चिड़ियाँ फुदकने लगीं। कोठी का वातावरण बड़ा ही मनोरम व आकर्षक प्रतीत होने लगा। पुत्रवधू के पायल की झंकार, कंगन की खनक, घूँघट की सरसराहट, सुमधुर गायकी, स्वादिष्ट भोजन, प्रेमपूर्ण व्यवहार ठाकुर साहब के जीवन में संजीवनी का कार्य किया। अब ठाकुर साहब बात–बात पर खिलखिलाकर हँस पड़ते थे। शाम में उद्यान के रंग–बिरंगे जगमगाते प्रकाश के बीच झूले पर बैठी पुत्रवधू कोई दिव्य नारी–सी प्रतीत होती है, जिसके चेहरे की मुस्कान समस्त चराचर को मुग्ध करनेवाली है।

अब ठाकुर साहब की बेटियाँ जब कभी अपने पिता से मिलने आतीं, तो कोठी के मुख्यद्वार पर कदम रखते ही कोठी के अंदर खुशिहाली की गूँज को महसूस करतीं। ऐसा लगने लगा कि पुराने दिन लौट आए। अपने पिता को पूर्ववत् हँसते–खिलखिलाते देखकर बेटियों की आँखों में खुशी के अश्रु छलक पड़ते और इसका श्रेय अपनी सदाचारिणी, सुशीला, संस्कारी, गुणवती, रूपवती भाभी को देती है। साथ ही बार–बार उनके चरण–स्पर्श करती हुई कहती हैं–आपने इस घर की खुशियाँ वापस लायी हैं।इसके लिए हम सभी आपके ऋणी रहेंगे।

पिता से मिलकर बेटियाँ जब वापस ससुराल जाने को होती हैं, तब पिता खुशी–खुशी बेटियों को विदा कर रहे दीखते हैं।ऐसा लगता है कि ठाकुर साहब को पुत्री की विदाई का कोई दुःख नहीं है। उन्हें ज्ञात है बेटी ससुराल के आँगन की शृंगार है, पति की अमानत है। अतएव बेटियों की विदाई प्रसन्नपूर्वक करते हैं और बेटियों के समक्ष अपनी पुत्रवधू के माथे को चूमते हुए कहते हैं–सबसे प्यारी बेटी तो मेरे पास है।प्रभु इसे सदा खुश रखें। पिता की प्रसन्नता को देखकर बेटियाँ खुशी से बाग–बाग हो जाती हैं और पिता के चरण छूकर प्रणाम करते हुए आकाश की ओर देखकर प्रभु को शुक्रिया अदा करती हैं। आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बहाते हुए बहनों से कहती हैं–'लौट आईं खुशियाँ।'

समीक्षा

डॉ. विवेकी राय के उपन्यासों में लोककथा

पटेल सीमा देवी सत्यनारायण
शोधार्थी
सरदार पटेल वि.वि. गुजरात
मो.–9725872772

सामान्यतः 'लोककथा' का उद्‌भव मानव जीवन के समानांतर हुआ है; क्योंकि लोककथाओं में लोकजीवन की कहानियाँ निहित होती हैं। मनुष्य की यह प्रवृत्ति एवं प्रकृति ही है कि वह अपने जीवन की घटनाओं को या दूसरे के जीवन से जुड़े हुए प्रसंगों को एक–दूसरे से कहकर कहानी या किस्से के रूप में व्यक्त करता है। जब इन घटनाओं में कल्पनाओं का मिश्रण हो जाता है, तो वह लोककथा का रूप धारण कर लेती है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथाओं के लिए व्यवहार में लाया जाता है, जो मौखिक अथवा लिखित परंपरा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते रहते हैं। लोक प्रचलित परंपरा से चली आई मौखिक कथाएँ 'लोककथा' कहलाती है। लोकभाषा के माध्यम से लोकजीवन में स्थित विश्वास, आस्था और परंपरा पर आधारित कथाएँ लोककथा के अंतर्गत आती हैं। ये लोककथाएँ जनसमूह में स्फूर्ति एवं प्रेरणा का निर्माण कराती हैं। इस संबंध में डॉ. उत्तम भाई पटेल ने कहा है–"लोक मानस में प्रचलित कथाएँ लोककथाएँ होती हैं। इनका आधार लोककंठ होता है, जिसके सहारे लोक मानस में जीवित रहती है। ये लोककथाएँ मानवता की आदिम पारंपरिक प्रथाओं एवं उसके विभिन्न मूल्यों तथा विश्वासों का प्रतिनिधित्व करती हैं।"[1]

भारत में लोककथाओं का उद्‌गम स्रोत वेदों से माना जाता है। इस संदर्भ में डॉ. इन्दिरा जोशी कहती है–"भारत की भूमि विशिष्ट तथा नीतिकथाओं, पशु–पक्षी कथाओं, परिकथाओं के आविष्कार के लिए अनुकूल रही है।"[2] संस्कृत साहित्य में बृहद्‌कथा, पंचतंत्र, हितोपदेश, जातककथा आदि प्रमुख कथाएँ प्रचलित हैं। लोककथा को अंग्रेजी में फोक टेल (थ्वसा जंसम) कहते हैं।

ग्रामांचलिक जन–जीवन में लोककथा मनोरंजन के प्रमुख साधन के रूप में माना जाता है। वृद्ध लोगों द्वारा खेतों में काम करते समय, पशुओं को चराते समय, रात्रि समय गप हाँकते समय और बच्चों के साथ खेलते समय लोककथा अत्यन्त रोचक ढंग से सुनाई जाती है। ये कथाएँ परंपरागत, मौखिक एवं परिवर्तनीय होती हैं। इस संदर्भ में डॉ. विवेकी राय का कहना है–"लोककथाओं की भूमिका ग्राम जीवन के जिस सांस्कृतिक आयाम का उद्‌घाटन करती है, वह एक उपलब्धि है।"[3]

विवेकी राय के 'लोकऋण' (1977), 'सोनामाटी' (1983), 'समर शेष है' (1988), 'मंगलभवन' (1994) और 'नमामि ग्रामम्' (1996) आदि उपन्यासों में ग्रामांचलिक जनजीवन में प्रचलित लोककथाओं का आवश्यकतानुसार प्रयोग हुआ है तथा इन कथाओं के माध्यम से उचित बोध भी दिया गया है। 'लोकऋण' में रामपुर गाँव के सभापति त्रिभुवन की हड़पनीति, अन्यायी और अत्याचारी प्रवृत्ति को लक्ष्य करके हरनारायण बन्दर और बन्दरियाँ का किस्सा सुनाते हुए त्रिभुवन को सुधरने की सलाह देता है। 'बन्नर और बन्नरियाँ' में चर्चा.... यह गाँव रहने लायक नहीं रह गया है, ऐसा उन्हें लगना, ... गाँव छोड़कर दूसरे गाँव जाने का विचार मन में आना.... जिस गाँव की रहनी बिगड़ती है, वहाँ रहना खतरे से खाली नहीं, ऐसा उनके द्वारा सोचना.... गाँव की बूढ़ी और जवान औरतों का वहाँ जुटना.... अचानक एक बड़े सिंगवाले बकरे का आक्रमण.... एक बूढ़ी औरत के पेट में सिंग का घुसना.... बूढ़ी का मर जाना.. ..बन्नर का गाँव छोड़कर जाना, ... बन्नरिया का वहीं रहना, खून की जाँच पर आये साहब द्वारा चिड़ियों पर गोली दागना, ...चिड़ियों का उड़ जाना, ...बन्नरिया का ढेर हो जाना।"[4]

उक्त लोककथा के माध्यम से गाँव की बिगड़ी नीति सुधारने का प्रयास किया गया है। 'लोकऋण' उपन्यास की सांस्कृतिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए डॉ. सत्यकाम कहते हैं–"इस उपन्यास में उपन्यासकार ने ग्राम जीवन के सांस्कृतिक पतन को अभिव्यक्त किया है।"[5]

'सोनामाटी' में करइल क्षेत्र में गंगा मैया को चुनरी चढ़ाने की प्रथा है और बक्सर में रामरेखा घाट पर नित्य चुनरी चढ़ानेवाली औरतों की भीड़ लगी रहती है। चुनरी चढ़ाने के पीछे की लोक प्रचलित लोककथा रामरूप की माँ सुनाती है–"किसी गाँव की महिला को गंगाजी द्वारा स्वप्न में आकर वह अपने भाई से चुनरी लेकर चढ़ाने पर भाई के कल्याण होने का आदेश देना, ... औरत का नैहर जाना, ... भाई से चुनरी माँगना,.... भाई द्वारा उसे पाखंड कहना, ... दूसरे दिन भाई की अचानक मृत्यु होना, बाद में गंगाजी द्वारा सपने में आकर भाई के कफन का टुकड़ा ओढ़ लेने पर भाई का जीवित हो जाने का आदेश देना, ...उस महिला द्वारा आदेश का पालन करना, ... भाई का जीवित होना।"[6] बस तभी से प्रत्येक स्त्री भाई से चुनरी लेकर पिठारे के साथ गंगा को चढ़ाती है। यदि सगा भाई न हो तो दूर–दराज के भाई को खोजना पड़ता है। इस लोककथा का पालन करइल क्षेत्र की महिलाएँ श्रद्धा से चुनरी चढ़ाकर करती हैं। इस लोककथा के माध्यम से ग्रामांचलिक जन–जीवन की सांस्कृतिक परम्परा की छवि उभर उठती है।

'समर शेष है' में प्रचलित लोकतंत्र की शासन–व्यवस्था की स्थिति और गति, भ्रष्टाचार, नौकरशाही आदि की स्थिति को स्पष्ट करते हुए पंडित संतोषी मास्टर एक रूपक कथा धनेसर को सुनाते हैं–"एक राजा का बीमार होना, ... डॉक्टर द्वारा मलाई खिलाने की सलाह, बीमारी बढ़ना, नौकर पर पर्यवेक्षण के लिए एक और नौकर रखना, दोनों नौकरों द्वारा आधी से अधिक मलाई खाना, उन दोनों पर नजर रखने के लिए एक और अधिकारी रखना, तीनों नौकरों द्वारा मलाई खाना, राजा के मुख पर थोड़ी सी मलाई लगाई जाना, राजा का मरणासन्न स्थिति में पहुँचना।"[7] उक्त लोककथा से प्रचलित नौकरशाही की मनमानी, भ्रष्ट व्यवहार और सामान्य जनता की दुर्दशा का हाल स्पष्ट होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में एक और लोककथा उभरकर आती है। जिस दिन महात्मा गाँधीजी के कारण स्वतंत्रता प्राप्त हुई, उन्हीं को भूलकर आज राजनेता कुर्सी की राजनीति का खेल रच रहे हैं। इस कारण देश कठिन

स्थितियों के दौर से गुजर रहा है। यह गाँधीजी का शाप है, ऐसा कहकर एक मजदूर कथा सुनाता है–"एक किसान के दो लड़के होना, किसान की मृत्यु के बाद... लड़कों के द्वारा बाहर से काफी धन कमाकर घर लाना, धन का हिसाब रखना, एक भूखे साधु द्वारा शाप देना, घर के मतिमद से भ्रष्ट होना, बड़े भाई के मन में छोटे भाई के विवाह का विचार आना, उसका पंडित के पास जाना, पंडित द्वारा बेवकूफ बनाना, संपूर्ण धन की माया से पीड़ित होना, पूरे घर का दिनोंदिन मद से ग्रस्त रहना, बाद में घर का चौपट हो जाना।"[8]

उक्त कथा के माध्यम से यह बोध होता है कि यहाँ भूखे–भिखारी साधु को गाँधीजी का प्रतीक माना और किसान पुत्रों को नए सत्ताधीशों का प्रतीक माना है। गाँधीजी को भूलकर सत्ताभोगी बने लोकतंत्र को उन्हीं का शाप लगा है।

'मंगलभवन' में दयालपुर गाँव के किसी पुराने सत्ती माहात्म्य को सिद्ध करनेवाली 'भूतही गडही' में पूरब की ओर एक सत्तोसती का चौरा है, जहाँ दीपावली के दिन दीप जलाए जाते हैं और विवाहोपरान्त कक्कन छूटने की विधि पूर्ण की जाती है। पार्वती के स्वप्न में एक दिन सत्तोसती का जाकर रोते–बिलखते हुए कहना–"दयालपुर में रक्त और अग्नि की बरसात होने लगेगी... दूध–पूत की भारी नाम–हानि होगी।"[9] फिर बाद में गाँव की महिलाओं द्वारा सत्तोसती के चौरे का जीर्णोद्धार संबंधी कथा को व्यक्त कर, गाँव के श्रद्धाशील रूप को व्यक्त किया।

'नमामि ग्रामम्' में ग्रामीणजन कंजूसी और कृपणता केवल भोजन, वस्त्र, अतिथि सत्कार, मवेशियों को खिलाने तथा बच्चों के लालन–पालन आदि में ही नहीं करते, बल्कि देवी– देवताओं के पूजा–पाठ में भी करते । इसी प्रवृत्ति को एक लोककथा के माध्यम से वृद्ध गाँव व्यक्त करता है–"एक बुढ़िया द्वारा प्राणरक्षा के लिए नाव भर सोने की मनौती माँगना, बाद में मसूर की भूसी सोने के लघु कण से भरकर गंगा में प्रवाहित करना, हाथ जोड़कर कहना–हे गंगा माता! छोटी नाव, नाव ही है और बड़ी नाव, नाव ही है। अतः लो अपनी मनौती और प्रसन्न हो जाओ।"[10]

निष्कर्षतः विवेकी राय के उपन्यासों में निहित लोक कथाओं के माध्यम से बोधगम्य संकेत प्राप्त होते हैं। जैसे– 'लोकऋण' में गाँव के रहन–सहन में सुधारबोध, 'समर शेष है' में शासन की भ्रष्ट व्यवस्था को उजागर करने का बोध और उन्मत्त शासनकर्ताओं पर व्यंग्य करने का बोध, 'मंगलभवन' में ग्रामीण महिलाओं के श्रद्धा स्थानों को परखने का बोध, 'नमामि ग्रामम्' में मनष्य की कंजूसी को खोलकर रखने का बोध आदि। इन लोककथाओं के माध्यम से ग्रामांचल के समूह जीवन की मानसिकता एवं उस ग्रामांचल का इतिहास–भूगोल प्रस्तुत करती है। डॉ. विवेकी राय ने उक्त लोककथाओं के द्वारा ग्रामांचलों की नैतिकता, उनके श्रद्धा–स्थल, लोकतंत्र में स्थित अनिष्ट प्रवृत्तियों को बड़ी ही मार्मिकता से स्पष्ट किया है।

संदर्भ उल्लेख–

1. आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन, डॉ. उत्तम भाई पटेल, पृ0 52
2. हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्व, डॉ0 इन्दिरा जोशी, पृ0 11
3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्य जीवन, डॉ0 विवेकी राय, पृ0 281
4. लोकऋण, डॉ. विवेकी राय, पृ. 68
5. माटी की महक, सं. डॉ. सत्यकाम, पृ. 79
6. सोनामाटी, डॉ. विवेकी राय, पृ. 394
7. समर शेष है, डॉ. विवेकी राय, पृ. 505
8. वही, डॉ. विवेकी राय, पृ. 513
9. मंगलभवन, डॉ. विवेकी राय, पृ. 172
10. नाममि ग्रामम्, डॉ. विवेकी राय, पृ. 102

कविता

हस्तिनापुर लुट चुका है

डॉ. अश्विनी

लुट चुका है हस्तिनापुर
क्योंकि शिखंडियों के
सामने निस्तेज पड़ा है
पितामह भीष्म शरशैय्या पर
वांचने लगा है उपदेश कथा
लगता है
भीम की गदा भी खामोश है
और अर्जुन की गांडीब भी
निस्प्राण कहीं खो गया है
धर्मराज का धर्म विज्ञान सूत्र भी
सुना है अंतरिक्ष के वियावान में
चक्का लगा रहा है
तभी तो द्रौपदी सरेआम
लुटी जा रही है पापियों द्वारा
अब तो लगता है भगवान
श्री कृष्ण भी भूल गये हैं
धरती पर आने की बात
और पापियों को नाश
करने की धर्म को
स्थापित करने की
जब श्री कृष्ण ने सखा
अर्जुन से कहा था
लगता है बांसुरी की गूंज व
पांचजन्म शंखध्वनि
भी कहीं नहीं बजती
क्योंकि अब
कृष्ण की मेधा
भीष्म का तेज
भीम का पराक्रम
और अर्जुन का पुरूषार्थ
चुक गया है तभी तो
काले पापियों
की सेना में लुट लिया है
हस्तिनापुर को ।

भेंटवार्ता :

ग़ज़लकार डॉ. अनिरुद्ध सिन्हा से कुसुमलता सिंह की बातचीत

कुसुमलता, सम्पादक
परिंदे, दिल्ली 9968288050

प्रश्न–आप पिछले कई दशकों से रचनाकर्म से जुड़े कवि, कथाकार, आलोचक हैं। इधर कुछ वर्षों में आपने हिन्दी गजल की दुनिया में मजबूत पहचान बनाई है। आपमें बहुमुखी प्रतिभा है। हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू गजल समानांतर विधा है या इन्हें अलग–अलग विधाएँ मानते हैं?

उत्तर–लेखन का गणित उम्र और विरासत से हल नहीं होता। हाँ, भले हम ये परिकल्पना कर सकते हैं, हमारी लेखकीय उम्र क्या है?लेखन का उत्कर्ष परिपक्वता है। लेखन की सामाजिक सरोकारों के प्रति क्या भूमिका है?आनेवाले भविष्य को उज्ज्वल और आशाजनक रंगों में हम कितने सफल हुए हैं आदि–आदि। हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल शिल्प की दृष्टि से दोनों में एकरूपता है। मिजाज दोनों के अलग–अलग हैं। उर्दू ग़ज़लों में प्रतिक्रिया के स्वर हैं, जबकि हिन्दी ग़ज़लों में आधुनिकताबोध... प्रजातिवाद, भाषावाद और क्षेत्रीयतावाद से बिल्कुल अलग। हमारी पहचान हमारा लेखन है। पाठक हमें कितना पसंद करता है, यह देखना है।

प्रश्न–क्या हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल ने ही सामाजिक सरोकारों को साथ किया है?

उत्तर–उर्दू ग़ज़ल के साथ सबसे समस्या है कि वह मंचों के साथ गहरे रूप में जुड़ी हुई है। मंच पर कैसी चीजें पढ़ी जाती हैं, पता होगा। एक बात और... रूपवाद और कलावाद का प्रभाव अभी भी इसके ऊपर है। ऐसी परिस्थिति में सामाजिक सरोकार तो खंडित होंगे ही। हिन्दी ग़ज़ल में विचार, भावना और सौंदर्य बोध सारे तत्व मिल जाएँगे। हिन्दी ग़ज़ल वर्तमान विसंगतियों से मुठभेड़ करने में पूरी तरह सक्षम है, कर भी रही है।

प्रश्न–हिन्दी ग़ज़ल के क्रमिक विकास के बारे में बताएँ?

उत्तर–कुछ लोगों का मत है कि हिन्दी ग़ज़ल की यात्रा अमीर खुसरो से आरंभ होती है। लेकिन यह ख्याल पूरी तरह भ्रामक है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अनभ्यस्त विचार सरल होने पर भी कठिन होते हैं और उन्हें स्वीकार करने में असुविधा होती है, लेकिन जब मंथन आरंभ होता है तो धीरे–धीरे सच पर पड़ी गाँठे खुलने लगती हैं। अमीर खुसरो की ग़ज़लों के मूल्यांकन के साथ ही भाषा, परिवेश और औचित्य को देखना होगा। साक्ष्य की सारी संभावनाओं को उद्घाटित करने के बाद ही कोई ठोस निर्णय की बुनियाद रखी जा सकती है। अमीर खुसरो के बाद ग़ज़ल लेखन में कबीर साहब का नाम आता है। कबीर की गजलों की संख्या के बारे में साफ तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। अभी तक उनकी एक ग़ज़लही चर्चा में है–'हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या'। बदलते परिवेश में हिन्दू– मुस्लिम में आ रही खटास को रोकने की एक अनूठी पहल भारतेन्दु ने ग़ज़ल लेखन के माध्यम से की। भारतेन्दु मूलतः खड़ी बोली के साहित्यकार थे। यद्यपि वे स्वयं उर्दू में कविताएँ/ग़ज़लें लिखते थे। उनका उपनाम 'रसा' था। उनकी गजलें इसी नाम से उपलब्ध हैं। शमशेर बहादुर सिंह की तनी हुई मुट्ठियों के साथ ही दुष्यन्त कुमार का युग आरंभ होता है। मोटे तौर पर हिन्दी ग़ज़ल का विकास हम इस रूप में भी देख सकते हैं–कबीर से भारतेन्दु, भारतेन्दु से शमशेर बहादुर सिंह, शमशेर बहादुर सिंह से दुष्यन्त कुमार, दुष्यन्त कुमार से आजतक। हिन्दी ग़ज़ल के विकास के साथ–साथ हम यथार्थ की तह में जाकर जैविक विश्वास, नैतिक श्रद्धा, बौद्धिक श्रद्धा और तार्किक निश्चय भी देखें। साहित्य योगदान और औचित्य के साथ चलता है।

प्रश्न–आपने अपनी पहली ग़ज़ल कब लिखी?

उत्तर–रचना–प्रक्रिया के दौरान आपके दिमाग में किसी पाठक की तस्वीर होती है?

उत्तर–साहित्य का असल उद्देश्य ऊँचे विचारों के साथ समाज के अनुरूप यथार्थ का निर्माण करना है। जहाँ समाज है, वहाँ व्यक्ति तो होगा ही। जब आप जल्दी में कोई प्रचारात्मक रचना कर रहे हों, तब कोई व्यक्ति या पाठक सामने आ जाता है। मेरे साथ ऐसा कभी नहीं हुआ। मेरी रचना–प्रक्रिया समष्टि को संबोधित पर आधारित है, जिसमें युग्म और समय की प्रवृत्तियों की आहट होती है।

प्रश्न–वह कौन–सा दौर था, जिसका प्रभाव आपके लेखन पर सबसे अधिक पड़ा?

उत्तर–कुसुमजी! ऐसे यह प्रश्न मेरे लिए काफी जटिल है, फिर भी कोशिश करता हूँ, कुछ बातें बाहर आ जाएँ। "पेट की आग चेहरा नहीं देखती, वह स्वयं को ही जलाती है। चिल्ला–चिल्लाकर प्रतिवाद करने का मौका भी नहीं देती। कहाँ होता है चट्टान की तरह दृढ़ता से खड़े रहने का शौक।" मुझे अपनों ने तपाया और जलाया है। मेरा दोष मेरा दुर्भाग्य था। मैं जब चार साल का था, मेरी माँ गुजर गई। मेरा सिर पिता की गोद में आ गया। कुछ वर्षों के बाद जब मैं कॉलेज आया, पिताजी गुजर गये। एकाएक मेरा भविष्य फुटपाथ पर चला आया। चार भाई–बहनों में मैं सबसे छोटा था। बहनों का विवाह हो गया था। मेरे बड़े भाई जो मेरी दोनों बहनों से बड़े थे, उनका भी विवाह हो गया था। वे सरकारी सेवा में थे। भाभी...क्या कहूँ?बस, इतना मान लें कि मैंने लगातार दस वर्षों तक कुत्ते की तरह दो रोटी का इंतजार किया। मित्रों से, पड़ोसियों से रो–रोकर फीस के पैसे माँगता रहा और पढ़ता रहा। सैकड़ों बार पैसे के लिए महफिलों और मंचों पर गाना गाया, तब कहीं जाकर मेरी शिक्षा पूरी हुई। स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त करने से पहले मैं सरकारी सेवा में आ गया। मैं अपने दर्द और आँसू को आठवीं कक्षा से ही टूटी–फूटी पंक्तियों में पिरोना शुरू कर दिया था। मैं विद्यालय और कॉलेज का दुलारा छात्र था।

प्रश्न–आप अर्थशास्त्र जैसे विषय की डिग्री लेने के बाद हिंदी ग़ज़ल की ओर आपका रुझान कैसे हुआ?

उत्तर–मुझे स्वर और कंठ ने ग़ज़ल लेखन की ओर प्रेरित किया। मैं हिन्दीभाषी था। शिल्प की जानकारी प्राप्त कर ग़ज़ल लेखन की ओर मुड़ गया।

प्रश्न–आपका पहला हिंदी ग़ज़ल संग्रह 'तिनके भी डराते हैं' का शीर्षक चर्चित रहा?आपने ऐसा जान–बूझकर रखा कि वह चर्चित हो या यही शीर्षक रचना से मेल खा रहा था?

उत्तर–यह शीर्षक ग़ज़लों की माँग पर रखा था। यह पुस्तक 1997 में आई। उस समय बिहार में लालू राज था, जो जंगल राज से प्रसिद्ध था। बिहार की जनता मृत्यु, अपहरण आदि आपराधिक भय की पीड़ा से छटपटा रही थी।

प्रश्न–क्या वर्तमान समय में ग़ज़ल की प्रासंगिकता कुछ कम हुई है?

उत्तर–बिल्कुल नहीं, सच तो यह है कि हिन्दी ग़ज़ल के सहारे ही हिन्दी काव्य को पूरा किया जा सकता है। मुक्त छंद के नाम पर जो हिन्दी साहित्य में कचरा भरा गया था, उसे साफ करने में हिन्दी ग़ज़ल हाँफ रही है। लेकिन भरोसे की बात है कि इसे पाठकीय अनुमति मिली हुई है, वरना हिन्दी आलोचना के जल्लाद दुष्यन्त कुमार के साथ ही हिन्दी ग़ज़ल को भी दफन कर देते।

प्रश्न–इधर सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में देशों में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुए हैं। आपके विचार से इसका असर ग़ज़ल विधा या समग्र रूप से साहित्य पर किस रूप में पड़ेगा?

उधर–देखिए, कुसुमजी! आप यह अच्छी तरह जानती हैं, साहित्य का सरोकार समाज के साथ रहता है। समय का अत्याचार और उसकी प्रतिरोधात्मक स्मृति समझने के लिए साहित्य सर्वोत्तम उदाहरण है। समाज के पूरे परिदृश्य में ज्ञान और विरोध की स्थिति क्या होगी, यह साहित्य तय करता है। समय के साथ साहित्य में भी बदलाव आता है। साहित्य का सीधा सिद्धांत है–ज्ञान दो और विसंगतियों का विरोध करो। साहित्य ही विसंगतियों की कल्पना की स्वायत एवं मिथकीय जगत को ध्वस्त करता है। इस बढ़ते परिवेश में साहित्य अपनी भूमिका निभाने में सक्षम है।

प्रश्न–ग़ज़ल की प्राचीन परंपरा हिन्दी ग़ज़ल के परिप्रेक्ष्य में कितनी प्रासंगिक है?

उत्तर–प्राचीन ग़ज़लों में आवाजों का तन्हा अहसास, प्रेम की भावुकता और सहजता, शृंगार और भक्ति का रहस्यलोक था। उर्दू साहित्य में जब इश्केमजाजी और इश्केहकीकी की बात होती है, तो ईश्वर को प्रेमिका और आत्मा को प्रेमी माना जाता है। लेकिन अब स्थितियाँ बदल चुकी हैं। जहाँ हिन्दी ग़ज़ल की बात है, तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है, आज की ग़ज़लों में हृदय को झकझोर देनेवाले भावनाचित्र और नई जमीन मिलती है। इससे संपूर्ण परिस्थितियों का सांगोपांग चित्रण कर मानव मन को रसस्निग्ध करने की क्षमता से युक्त एक नए काव्यक्षितिज का निर्माण किया है।

प्रश्न–ग़ज़ल की मौजूदा हालत के बारे में आप क्या सोचते हैं?

उत्तर–आज हिन्दी ग़ज़ल लेखन ने आंदोलन का रूप धारण कर लिया है। जब कोई विधा आंदोलन का रूप लेती है, तो वह एक निश्चित परिणाम छोड़ जाती है। छायावाद काल को ही लीजिए। क्या हिन्दी साहित्य को छायावाद की चर्चा से मुक्त किया जा सकता है। आज जो गजलें वर्गवैषम्य, आर्थिक वैषम्य और सामाजिक वैषम्य से पीड़ित होकर लिखी जा रही हैं, कल वह मील का पत्थर साबित होगी। ऐसा मेरा मानना है।

प्रश्न–जनजातीय चेतना के प्रति साहित्य की अन्य विधाओं कविता कहानी आदि की प्रतिबद्धता जगजाहिर है, पर क्या कारण है कि ग़ज़ल विधा उस प्रकार से नहीं जुड़ पाई?

उत्तर–देखिये, कुसुमजी! आप जानती हैं कि ग़ज़ल हिन्दी के लिए सर्वथा नई विधा है। इतने अल्पकाल में सारे विषयों को एक साथ समेट पाना थोड़ा मुश्किल तो है, असंभव भी नहीं। जनजातीय विषय पर भी ग़ज़लें लिखी जा रही हैं, लेकिन उस ओर ग़ज़लकारों का रुझान थोड़ा कम है। धीरे–धीरे यह कमी पूरी हो जाएगी।

प्रश्न–क्या ग़ज़लकारों को लगता है जनजातीय चेतना से जुड़ी रचनाओं को बाजार नहीं मिलेगा?

उत्तर–बाजारवादी सिद्धांत छद्म पर आधारित होता है। साहित्य इससे मुक्ति सुनिश्चित करता है, जिससे इसका यथार्थ और औचित्य तृप्त होते हैं। बाजारवादी सोच प्रचार चालबाजी और सच्चाई को विकृत रूप में प्रस्तुत करने के उपाय हैं। हिन्दी ग़ज़ल बाजार की वस्तु नहीं है। मैंने रुझान के बारे में कहा है।

प्रश्न–कहीं ऐसा न हो कि ग़ज़लें, नज्में, रूबाई पुराने जमाने की यादगार बनकर ही रह जाए। इस बारे में आपकी क्या राय है?

उत्तर–सामाजिक सरोकार ही किसी विधा को ऊपर या नीचे करते हैं। नई समाज व्यवस्था का साहित्यिक वर्चस्व कोई हानि नहीं पहुँचाता है। हिन्दी ग़ज़ल के साथ सामाजिक आदर्श है। डरने की कोई बात नहीं।

प्रश्न–समकालीन ग़ज़लकारों में किसे पसंद करते हैं?

उत्तर–मैं उन सारे ग़ज़लकारों को पसंद करता हूँ, जो सामाजिक आदर्श से जुड़े हैं। जिनकी दृष्टि हमेशा स्वस्थ और नव आदर्शमय अनागत की तरफ रही है।

प्रश्न–नए रचनाकारों के लिए कुछ संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर–नए रचनाकार प्रचारात्मक स्तर पर लेखन नहीं करे। प्रतिबद्धता को अपना लेखकीय हथियार बनावे।

(अनिरुद्ध सिन्हा, गुलजार पोखर, मुंगेर)

भूमिका...

- जेन्नी शबनम

नेपथ्य से आयी
धीमी पुकार
जाने किसने पुकारा
मेरा नाम,
मंच पर घिरी हूँ
उन सभी के बीच
जो मुझसे सम्बद्ध हैं
प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष,
अपने में तल्लीन
मैं अपनी भूमिका निभा रही हूँ
कंठस्थ संवाद दोहरा रही हूँ,
फिर ये कैसा व्यवधान
किसकी है ये पुकार

कोई नहीं दिखता
नेपथ्य में अँधियारा
थोड़ी दूरी पर थोड़ा उजाला
घुटनों में मुँह छुपाये
कोई छाया,
स्वयं को बिसराकर
अज्ञात पथ पर चलकर
मंच तक पहुँची थी मैं
और उसे छोड़ आयी थी
कब का भूल आयी थी,
कितनी पीड़ा थी
अपने अस्तित्व को खोने की व्यथा थी
बार-बार मुझे पुकारती थी,

दर्शकों के शोर में
उसकी पुकार दब जाती थी
मंच की जगमगाहट में
उसका अन्धेरा और गहराता था
पर वो हारी नहीं
सालों साल अनवरत
पुकारती रही
कभी तो मैं सुन लूँगी
वापास आ जाऊँगी,
कुछ भी विस्मृत नहीं
हर क्षण स्मरण था मुझे
उसके लिए कोई मंच नहीं

न उसके लिए कोई संवाद
न दर्शक बन जाने की पात्रता
ठहर जाना ही एक मात्र आदेश,
उसकी बिखराता
और जाना पड़ा था दूर
अपने लिए पथ ढूँढना पड़ा था मुझे,
मेरे लिए भी अकथ्य आदेश
मंच पर ही जीवन शेष
मेरे बिना अपूर्ण मंच
ले आयी उसे भी संग
अब दो पात्र मुझमें बस गए
एक तन में जीता
एक मन में बसता
दो रूप मुझमें उतर गए!

समीक्षा

'सोच विचार' की भव्यता का एक और मानक अंक : मनु शर्मा एकाग्र

डॉ0 रामसुधार सिंह
राजर्षि नगर, वाराणसी, 9451890720

एक आम भारतीय की सोच के साथ लोकहित के लिए समर्पित और एक स्वस्थ साहित्यिक वातावरण के निर्माण हेतु सम्बद्ध 'सोच विचार' का प्रत्येक अंक लोकप्रिय रहा है। प्रतिवर्ष काशी पर विशेष सामग्री से युक्त 'काशी अंक' तो काशी का इनसाइ– क्लोपीडिया बन गया है। इसका प्रत्येक मासिक अंक–निबंध, कहानी, कविता के साथ संबंधित महीने के पर्व–त्यौहार, विशिष्ट तिथियों की महत्ता एवं रचनाकारों के संस्मरण से समृद्ध होता है। मार्च 2016 का विवेच्य अंक सुप्रसिद्ध कथाकार मनु शर्मा पर केन्द्रित है। जीवन के बीहड़ संघर्षों से जूझते हुए लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास, दो सौ कहानियों और इनके चार उपन्यास उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत हुए और अनेकानेक रचनाएँ देश व विदेश की कई भाषाओं में अनूदित हुई हैं। पहले 'एकलिंग का दीवान', 'राणासांगा' जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों के बाद आप महाभारतकालीन पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर तत्कालीन महानायकों की आत्मकथाएँ लिखने की ओर प्रवृत्त हुए और इस क्रम में 'द्रोण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा', द्रौपदी की आत्मकथा', 'गांधारी की आत्मकथा' और आठ खंडों में प्रकाशित विशालकाय 'कृष्ण की आत्मकथा' जैसी कृतियाँ प्रकाशित हुईं। महाभारत के अध्ययन–अनुशीलन, चिंतन–मनन के साथ आत्मकथात्मक शैली की कसी हुई भाषा को इन रचनाओं में देखा जा सकता है। आज 87 वर्ष के हो चुके मनु शर्मा को सुब्रह्मण्यम् भारती सम्मान, म.प्र. शासन का शिखर सम्मान, उ.प्र. शासन का यशभारती सम्मान और भारत सरकार का पद्मश्री सम्मान जैसे विशिष्ट सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। हिन्दी जगत के बड़े पाठक वर्ग ने उन्हें अप्रतिम आदर दिया है। बनारस की गलियों में रचे–बसे मनु शर्मा यहीं के होकर रह गये। जीवन के शतक वर्ष की ओर मनु शर्मा आज भी हमारे बीच हैं और सृजनपथ के पथिकों के लिए एक आदर्श हैं।

ऐसे अप्रतिम रचनाकार के समग्र जीवन पर एक विशिष्ट अंक निकालकर 'सोच विचार' ने प्रशंसनीय कार्य किया है। 'सोच विचार' का यह अंक हिन्दी जगत के साथ बनारस की आम जनता की ओर से दिया गया सम्मान है। अंक के आरंभ में कृष्ण की आत्मकथा, द्रौपदी की आत्मकथा, कर्ण की आत्मकथा, एकलिंग का दीवान, अभिशप्त कथा, तीन प्रश्न, विवशिता, मरीचिका, लक्ष्मण रेखा, गाँधी लौटे जैसी रचनाओं के साथ व्यंग्य कथा के अंश दिये गये हैं, जिनके माध्यम से पाठक संबंधित उपन्यासों के संक्षिप्त कथानक को जान–समझकर पूरी पुस्तक पढ़ने की ओर प्रवृत्त हो सकता है।

मूल्यांकन के अंतर्गत शर्मा जी के निकटतम मित्र एवं प्रकाशक श्रीयुत् कृष्णचन्द्र बेरी जी के यहाँ प्रतिदिन शाम को बैठक हुआ करती थी, जिसमें शर्मा जी के साथ बदरीनाथ कपूर, योगेश्वर विश्वनाथ प्रसाद आदि अनेक लोगों की सहभागिता रहती थी। बाहर से आये किसी भी साहित्यकार पर वहाँ गोष्ठी हुआ करती थी। बेरी जी ने बनारस की साहित्यिक हलचलों के बीच मनु शर्मा के व्यक्तित्व को रेखांकित किया है। इस क्रम में राजवैद्य शिवकुमार शास्त्री ने शर्मा जी के जीवन–संघर्ष के ताप में तपकर कंचन बने व्यक्तित्व का मूल्यांकन सटीक किया है और उन्हें सर्वप्रिय सामाजिक सिद्ध किया है। बेरी जी के यहाँ आयोजित गोष्ठियों के साथ सुप्रसिद्ध भाषाविद् तथा कोशकार बदरीनाथ कपूर ने उन्हें नए लेखकों को उत्साहित कर उचित परामर्श देनेवाला बताया है। पंडित धर्मशील चतुर्वेदी ने हनुमान प्रसाद शर्मा से मनु शर्मा हो जाने से संबंधित गप का अपनी शैली में बताते हुए प्रसाद जी की कहानी 'गुण्डा' के नाट्य मंचन में शर्माजी की सहभागिता की चर्चा की है। इस क्रम में 'जनवार्ता' ने संकटमोचन नाम से लिखी जानेवाली व्यंग्य कविताओं के संबंध में तत्कालीन योजना की जानकारी दी है। प्रसिद्ध ललित निबंधकार डॉ. उमेश सिंह ने शर्मा जी के आत्मकथात्मक उपन्यासों के वैशिष्ट्य पर बहुत ही गंभीर और सार्थक टिप्पणी की है। शर्माजी के द्वितीय पुत्र प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित पत्रकार हेमन्त शर्मा ने 'मतापुद्ध का सारथी' शीर्षक आलेख में विस्तार के साथ अकबरपुर में शर्मा जी के जन्म, बनारस के संघर्ष, डी.ए.वी. की नौकरी बेढब जी के सहयोग के साथ उनकी रचना–प्रक्रिया के वैशिष्ट्य को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है। हेमन्तजी ने यह संकेत किया है कि उनके पौराणिक उपन्यासों को उत्तर आलोचना साहित्य में माफिया जगत ने भले मान्यता न दी हो, लेकिन उन्हें लोक मान्यता मिली है। इस संदर्भ में 'कृष्ण की आत्मकथा' का वह आत्मकथ्य उद्धृत किया गया है, जिसकी चर्चा अनवरत होती है–'आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, नहीं तो बरसों बाद डायनासोर के जीवाश्म की तरह पढ़ा जाऊँगा।'

कृतियों के मूल्यांकन के अंतर्गत वरिष्ठ साहित्यकार विवेकी राय जी 'कृष्ण की आत्मकथा' का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं कि कृष्ण की आत्मकथा लिखने के लिए लेखक को अपने मन को कृष्ण के मन में मिलाना पड़ा है। इस क्रम में कर्ण की आत्मकथा (राजेन्द्र प्रसाद पांडेय), एकलिंग का दीवान (सुधाकर अदीब), लक्ष्मण रेखा (मुक्ता), मरीचिका (जितेन्द्र नाथ मिश्र), गाँधी लौटे (रामसुधार सिंह), विवशिता (हृदयेश मयंक), अभिशप्त कथा (अमिता दूबे), के बोला माँ तुमी अबले (विजयेन्द्र नाथ मिश्र) आदि कृतियों का संक्षिप्त किन्तु सार्थक मूल्यांकन किया गया है।

काशी की मस्ती भरी आबो–हवा में रचे–बसे और हास्यरस के महारथी बेढब बनारसी के शिष्यत्व में रहते हुए मनु शर्मा जी के भीतर हास्य–व्यंग्य की प्रतिभा भी भरपूर रही है। 'मुंशी नवनीतलाल' तथा अन्य कहानियाँ उनकी हास्य–व्यंग्य प्रतिभा का सटीक उदाहरण है। यह एक हास्य प्रधान कथा है, जिसमें शर्मा जी ने व्यंग्य के ताने–बाने से कथा का ढाँचा तैयार किया है। इस कृति का मूल्यांकन वरिष्ठ व्यंग्यकार गोपाल चतुर्वेदी ने किया है। कथाकार के साथ–साथ शर्माजी एक सिद्धहस्त कवि हैं। इन्होंने हिन्दी के पारंपरिक छन्दों के साथ मुक्तछन्द में भी कविताएँ लिखी हैं। 'जनवार्ता' समाचारपत्र में संकटमोचन नाम से प्रकाशित होनेवाली कविताएँ शर्माजी की अप्रतिम कथाकार सिद्ध करती हैं। समकालीन विसंगतियों और राजनीतिक छल पर चोट करती ये कविताएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं। शर्मा जी के कविकर्म का मूल्यांकन सुरेन्द्र वाजपेयी ने किया है।

मनु शर्मा के लेखन कर्म पर व्यापक सामग्री देने के साथ प्रो. श्रद्धानंद तथा डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र द्वारा लिया गया साक्षात्कार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ा है। प्रारंभिक जीवन संघर्ष के साथ बनारस का जीवन और सृजन कर्म को जानने समझने में यह साक्षात्कार बहुत ही सहायक है। मनु शर्मा पर केन्द्रित अंक में इसके अतिरिक्त होली पर श्रीयुत् विद्यानिवास मिश्र के आलेख 'होली का आमंत्रण' में वसंतोत्सव तथा भारतीय लोकजीवन में होली के वैशिष्ट्य का निरूपण किया गया है। इसी के साथ पूरन शर्मा तथा प्रभुनाथ द्विवेदी के व्यंग्य–निबंध इस अंक को पूर्णता प्रदान करते हैं। प्रतिष्ठित ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय के 'रस आखेटक' पर रमाकांत राय लेख महत्वपूर्ण है। कुल मिलाकर 'सोच विचार' का प्रस्तुत अंक अपने वैशिष्ट्य के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं संग्रहणीय बन गया है।

कविता :

मंजुला उपाध्याय 'मंजुल'
सम्राट चौक, पूर्णिया,
09431865979

रूह के करीब

सोचती हूँ
पीछे से दूँ
आवाज
घूमकर देखो
झूल जाऊँ
गले में
झूले की डोर–सी
पीठ पर धौल जमाकर पूछूँ
कैसे हो यार
बोलो तो
कर सकोगे
बचपन के दिनों जैसा
प्यार?

2. तन्हाइयों में

ऐसा कि,
बेखुदी अपनी
सरक गई
धड़कनें रुक गई हैं
किसी आहट पर
चौंकती नहीं मैं
नहीं होती
कविता अधीर
गजलें रूमानी
क्योंकि
मुस्कुराती नहीं मैं
अब तन्हाइयों में।

नसीम साकेती, कल्याणपुर
लखनउ
09415458582

शहीद का गर्म लहू

शहीद का रक्त–बीज
पत्थर पर भी उग सकता है
शहीदों का बलिदान
आजाद गुलामी
नादिरशाही
अस्मतों की लूट
फासिष्टों की गर्भ–पाती इरादे
देश–द्रोहियों
के बुने अँधेरों में
स्वर्ण रेख
तपस्वी की तपस्या
खून से जलाये दिये की रोशनी
देखा तेवर
शहीदों के गर्म लहू का
कब्र से उबाल खा गया
भारत की मिट्टी
सोंधी–सोंधी महक उठी
सूना शहादत का जय–घोष?
शहीदों के लहू का व्यापार करनेवालों के
कान बहरे हो गये
आँखें चुँधिया गईं
शर्म के मारे नाक पर पसीना आ गया
अब दाल नहीं गलेगी
किसी सीता का हरण नहीं होगा
धरती के कठोर वक्षस्थल पर
शहीदों के गर्म लहू से लक्ष्मणरेखा खिंची है
इसे लाँघनेवाले कुत्तों
जल जाओगे
नेस्त–नाबूद हो जाओगे
यह शहीद का गर्म लहू है।

देवेन्द्र कुमार मिश्रा
चन्दनगाँव, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
09425405022

सभी अकेले होते हैं

कोई न हो
तो कोई बात नहीं
सब हो
और कोई न हो
तब दुख तो होता है
ये तब सोचता था
जब दुनियादारी की
समझ न थी
अब तो यही समझ है
कि यहाँ सब अकेले हैं
कोई किसी का नहीं
अपनी लड़ाई खुद ही
लड़नी पड़ती है
जीते तो वाह–वाह
हारे तो अपने और पराये भी
सबकी लानतें और धिक्कार
मुँह फेरकर निकल जाते हैं
वे भी जो अपने कहलाते हैं
तो आपको ही जूझना है
अपनी समझ
अपने बल से
आपके साथ केवल आप हैं
इसलिए अपने आपको
दुरुस्त रखना
बाकी कोई दुख
की बात नहीं
समझना होगा
इस बात को
कि कोई किसी का नहीं होता
सब अकेले होते हैं।

2. खुद से निकलो

मन भय से भर जाये
तो समझना आप उलझे
हुए हैं खुद में
पहले स्वयं को तो
अपने आपसे
निकालो
तब किसी निर्णय पर पहुँचोगे
और फैसला लोगे
स्वयं में उलझना
तो नरक से भी बदतर है
अपने ही जाल है
मन के भ्रम
बेकार के श्रम
जैसे कि
पहले जूते पहने या मोजे
क्या करें
करें या न करें
होगा या नहीं
कैसे होगा
क्या कहेंगे, सोचेंगे लोग
अर्जुन की सी स्थिति
हो तो गीता से
स्वयं को
स्पष्ट करो
अन्यथा अवसाद ग्रस्त
होकर कुछ न कर पाओगे
और वहीं के वहीं रह जाओगे
विचारों के बवंडर
मन के उथल–पुथल से
बाहर निकलो
अन्यथा डूब जाओगे।

कविता

रजनी गुप्ता
संत जोसेफ, भागलपुर
, 7739329781

आदमी

हर पल हर क्षण
तन्हा है आदमी
फिर भी उत्साह से
लरबरेज है आदमी
जिंदगी जीने के मायने
बदलता है आदमी
वक्त और हालात का
शिकार है आदमी
खुशियों के पल को
ढूँढ़ता आगे बढ़ता है आदमी
अपनों में अपनो को
तलाशता है आदमी
हर पल हर क्षण
तन्हाँ है आदमी
फिर भी उत्साह से
लरबरेज है आदमी।

महेन्द्र देवांगन 'माटी',
गोपीबंद पारा पंडरिय
जिला कबीरधाम (छ.ग.)
8602407353

प्यासी चिड़िया

प्यासी चिड़िया ढूँढ रही है
पानी की एक बूँद
इधर उधर सब भटक रही है
पूरे झुंड के झुंड
चीं चीं चीं चीं करते करते
कंठ गया है सूख
झुलस रही हैं ताप में
कैसे मिटाये भूख
दया करो इन चिड़ियों पर
कोई न इसे भगाओ
छत के ऊपर पानी रखकर
दया भाव दिखलाओ
मुट्ठी भर चावल का दाना
छत पर तुम बिखराओ
भूखे प्यासे इन चिड़ियों के
जीवन तुम बचाओ।

सविता मिश्रा
9411418621

चढ़ेंगे आतंकी फाँसी जब

कुछ जवान शहीद हुए
और कुछ लोग मारे गये
आतंकी चार मरे
हम तो हजारों गये
यही आलम है अब हर कहीं
देश पर जुल्म की हद हुई
राजीव मरे, मारी गई इंदिरा
देश के गद्दारों ने
देश को खोखला किया
अब तो बाहरी भी घुस आए
एक–एक कर कई जुल्म ढाए
फिर भी लिपा–पोती करते रहे सब नेता
साध्वी प्रजा को जेल भेजा आतंकी बता
अफजल दिखता है जहाँ हाथी जैसा
वही प्रजा की कैसी कर दी दशा
जो आतंकी है वह मजे में रह रहा
जिस पर शक है बस उसे मिली सजा
सोचती है जब यह सविता
होती है बहुत खफा
पर क्या करूँ रह जाती मन मसोस
जताती हूँ सिर्फ अफसोस
शहीद हुए हैं जो, जो भी मारे गए
भगवान उनकी आत्मा को बस शांति दे
शहीदों पर भी जो सवालिया निशान लगाए
भगवान तू उन्हें भी यह मौका दे
मन को होगी शान्ति तब
चढ़ेंगे आतंकी फाँसी जब
ना जाने नेता सुधरेंगे कब
क्या सब मर मिट जाएँगे तब?

लघुकथा :

गुस्से का घोल

उर्मिला प्रसाद
मेंहदी बगान
पश्चिम बंगाल, 09933553195

मिस्टर माधवलाल की बड़ी इच्छा थी कि उनका छोटा पुत्र चार वर्षीय मिंटू, शहर के इंग्लिश स्कूल में पढ़े। इसलिए बिना समय गँवाए 'हैप्पी इंग्लिश स्कूल' का एडमिशन फॉर्म ले आए। वहाँ बच्चे के मौखिक साक्षात्कार पर एडमिशन होना था। माधवलाल के पास एक महीने का समय था, इंटरव्यू की तैयारी कराने के लिए। मिंटू को अंग्रेजी तोते की तरह रटाई गई।

एक महीने के बाद इंटरव्यू की तारीख भी आ गई। मिस्टर और मिसेज माधव बच्चे को लेकर स्कूल गये। वहाँ स्कूल के बरामदे में अभिभावकों की लंबी लाइन लगी थी। स्कूल का चपरासी एक–एक करके बच्चों का नाम पुकारता और अभिभावक बच्चों सहित अंदर इंटरव्यू रूम में जाते। बड़ी देर के बाद मिंटू की बारी आई। इंटरव्यू कक्ष में वहाँ की प्रिंसिपल मिसेज 'आरती' विद्यमान थीं। उन्होंने आदरपूर्वक मिंटू के माता–पिता को सामने की कुर्सियों पर बैठने का संकेत दिया, जो उनके लिए निर्दिष्ट थीं। बच्चे को पास बुलाया और सवाल शुरू किया–'ह्वाट इज योर नेम?' बच्चा तपाक से और बड़े द्रुतगति से उत्तर दिया–'माय नेम इज मिंटू लाल।' प्रिंसिपल–'गुड। एंड ह्वेयर डू यू लिव?' मिंटू–'आई लिव एट केस्टोपुर।' प्रिंसिपल–'वैरी गुड बॉय।' अब प्रिंसिपल ने अपनी बायें हाथ की हथेली ऊपर उठाकर पाँचों उँगलियों छितराकर पूछा, 'हाउ मेनी फिंगर डू यू हैव?' बच्चे ने भी उसी तरह से अपनी उँगली ऊपर उठाकर कहा–'फाइव।' प्रिंसिपल–'फाइव को हिन्दी में क्या कहते हैं?' बच्चा अकचका गया। वह मदद के लिए माँ–बाप की ओर देखने लगा। प्रिंसिपल ने प्रश्न फिर से दोहराया। इसपर माँ ने झट से सफाई दी–'मैम! दरअसल हमने इसे अंग्रेजी ही सिखाया है। हिन्दी तो यह अपने आप ही सीख जाएगा। हिन्दी कहाँ भागी जा रही है।' वह धीरे से मुस्कुरायी। मानो कह रही थी कि आजकल का यही सच है, यही माँग है, तो हम हिन्दी के पीछे क्यों वक्त बर्बाद करें। अभिभावक का ये जवाब सुनकर मिसेज प्रिंसिपल भीतर से कुछ टूट गयी, अगर यही हाल रहा तो एक दिन हिन्दी भाग ही जाएगी, इन बच्चों की जुबान से। आजकल के बच्चों को पचहत्तर, उनचास, पैंसठ जैसे शब्दों के अर्थ ही नहीं मालूम होते। उन्हें सेवेंटी फाइव, फोर्टी नाइन, सिक्सटी फाइव कहकर समझाना पड़ता है। तभी उन्हें याद आया, अरे! मुझे तो इतने सारे बच्चों का इंटरव्यू पूरा करना है। मैं क्यों बेकार के प्रश्न में उलझ गई। उन्होंने वापस कुर्सी पर बैठते हुए आधा ग्लास पानी में अपना गुस्सा घोलकर पी लिया और अगले छात्र को बुलाने के लिए चपरासी को निर्देश दे दिया।

व्यंग्य :

मेरे दौर का परम श्रद्धेय

अशोक गौतम
सोलन, हि.प्र.मो0–9418070089

बचपन में किताबों से उतना ही डरता था। जितना आजतक न देखी चुड़ैल से और जितना आज के दिन बीवी से डरता हूँ। पर मेरा दुर्भाग्य! किताबों के डर से तो बच गया, पर बीवी के डर से शायद मरने के बाद भी तभी मुक्त हो पाऊँ, जो उसके साथ मेरा यह लास्ट रन हो। पर डर है कि उसका करवा चौथ बीच में व्यवधान न उत्पन्न कर दे।

बचपन में मुझे किताब तो किताब, किसी फटी किताब का गत्ता भी दीख जाता था, तो मेरी सिट्टी–पिट्टी गुम हो जाती थी, पूरे बदन में कंपन होने लगता, पीसने पर पसीने आने लगते। मानो मुझे किताब का गत्ता देखकर ही बुखार हो गया हो। किताब छू ली तो मुनादी बुखार के पूरे चांस।

किताब देखते ही तब मुझे लगता था कि मेरे दिमाग को जैसा लकवा मार गया हो। देखते ही देखते दिमाग जाम हो जाता। ठीक वैसे ही जैसे महीना पहले शो रूम से निकाली कार हँसता– गाता इंजन एकाएक पुलिसवाले देख जाम हो जाता है। सच कहूँ तो इसी डर के चलते मैंने किताब के भीतर झाँकने की हिम्मत आज तक नहीं की। भले ही औरों के भीतर ताक–झाँक करने में विद्यावाचस्पति होऊँ।

मास्साब बाबूजी के खास दोस्त थे, सो उन्होंने पूरी जिम्मेदारी से भी अधिक पूरी ईमानदारी से मेरे हाथ में किताब थामने की हद से अधिक हर तरह से वैसी ही कोशिश की, जैसे अड़ियल चाचा साँड़ के नकेल डालने के लिए करते थे। पर मेरे हाथ भी ठहरे ठेठ दहाती, इन्होंने सबको शान से गच्चा दे सब कुछ उठाया, पर किताब उठाने से एकबार इनकार कर दिया, तो कर दिया। मानो भगवान ने मेरे हाथ किताब उठाने के सिवाय और सब कुछ उठाने को ही लगाए थे। वे मुस्तैदी से बापू की सदरी से सिक्के परे कांफिडेंस से उठा लेते। वे बापू की सदरी के अंदर की जेब से बीड़ी का पूरा बंडल पूरी हिम्मत से उठा लेते। क्या मजाल जो बाबूजी को पता चले कि उनका सपूत उनकी सदरी में रखे पूरे बीड़ी के बंडल पर हाथ साफ कर गया है।

आखिर मेरे दिमाग के आगे एक दिन मास्साब नतमस्तक हो ही गए। वैसे नतमस्तक होना तो उन्हें बहुत पहले चाहिए था। मुझे आज भी वह सीन मीना कुमारी सा याद है, जब वे चारोंखाने चित हो बाबूजी से क्षमादान माँगते मेरे आगे अपने दोनों हाथ जोड़ते संबोधित बाबूजी को करते बोले थे–'ठाकुर साहब! जिंदगी में एक से एक नालायक से वास्ता पड़ा। पत्थर पर भी लकीरें खींचने का हुनर था मेरे पास, पर अफसोस! इस महान् आत्मा के दिमाग में एक लकीर तक न खींच सका। इसके आगे मैं लाचार हूँ। इसकी विलक्षण बुद्धि के आगे मैं टूटी तलवार हूँ। लगता है, यह इस जन्म का नहीं, जन्मों–जन्मों का कालिदास है। यह बिन पढ़े ही डॉक्टरी पास है। कृपा कर अब अपने बेटे के हाथों में किताब थामने के लिए मुझे और न कहें। कहीं ऐसा न हो कि इसके हाथों में किताब थमाते–थमाते मैं अपने हाथ में किताब लेना ही भूल जाऊँ।'

'तो इसका आगे होगा क्या मास्साब?' हालाँकि मैंने तब तक किसी किताब में जल्लाद की तस्वीर भी न देखी थी, देखता तो तब जो कभी किताब

के गत्ते से आगे किताब के भीतर झाँका होता। पर उस वक्त बाबूजी पहली बार पूरे जल्लाद लगे थे, असहाय से। रत्ती भर कम न रत्ती भर ज्यादा।

अब से राजनीति में डाल देना। खूब चाँदी कूटेगा, वाहवाही लूटेगा, मास्साब ने दोनों हाथ जोड़ने के बाद से उस दिन से हमारे घर तो आना–जाना बंद कर ही दिया था, पर गाँव के स्कूल से भी अपना तबादला करवा लिया था। उस गाँव के स्कूल से जिसने उनकी पूरी की पूरी तनख्वाह बचवा कर रखी थी। उन्होंने गाँव से जाते–जाते ये बात भी ध्यान न रखी कि वे जितने साल हमारे गाँव में रहे, पानी के बदले मुफ्त के दूध से नहाते रहे। बदन में सरसों के तेल के बदले देशी घी लगाते रहे। उन्होने टाँगों के नीचे से अपने कान पकड़े कि बची मास्टरी में गधा भी मिले तो उसे भी सहर्ष पढ़ाऊँगा। पढ़ाकर डी.सी. बनाऊँगा, पर मेरे जैसे को बच्चों की उपस्थिति रजिस्टर में मरने के बाद भी न चढ़ाऊँगा।

आगे बाबूजी ने पढ़ने को कहा। पाँच बहनों के बाद छठा जो हुआ था उनका सपूत। बिन पढ़े ही स्वस्थ रहूँ तो खुदा ने विलायती दिया। किताब से पीछा छूटा तो लगा मैं मोक्ष पा गया। पर बाद में पता चला कि किताबों का जिंदगी में क्या महत्व है?

जब दस–बीस स्वयंभू बुद्धिजीवियों के बीच उठने–बैठने का सौभाग्य नसीब हुआ तो उनसे जाना कि आज के दौर में बंदे के पास बुद्धि भले ने हो, पर औरों के सामने अपने को बुद्धिजीवी घोषित करने के लिए उसके घर में ढेरों ऐसे लेखकों की किताबों से ठसाठस भरी आलमारियाँ होना जरूरी है, जिनके बारे में लिखनेवालों को भी पता न हो कि ये किताब उन्होंने ही लिखी है। उसे अपने नाम के आगे गधा होने के चलते डॉक्टरेट लगाना बेहद लाजिमी है। घर में आए मेहमानों के थू बाहर अपने बुद्धिजीवी होने की अफवाह फैलवाने के लिए जरूरी है कि उसके सोने के कमरे में किताबें दम घुटती मिलें, एक दूसरे पर चढ़ी हुईं, एक दूसरे के आगे अड़ी हुईं, ठीक आज के बुद्धिजीवियों की तरह एक दूसरे को साँस तक न लेने की कसम खाए। आज के सच्चे बुद्धिजीवी के किताबें हाथी के दिखाने के दाँतों की तरह होती हैं। रही बात खाने के असली दाँतों के बारे में जानने की सो बुद्धिजीवी के खाने के दाँत देखने के लिए मुँह में अपनी उंगुल डाल किसी को अपनी उंगलियाँ डलवानी हैं क्या?वह तो बिन दाँत भी कम नहीं होता।

आज का सच्चा बुद्धिजीवी वह है जो लोक–लाज की परवाह किए बिना किताबों के बीच प्रेमिकाओं की तरह बीवी के होते हुए भी दिन–रात घिरा रहे। किताबें चाहे किवाड़ी से लेकर ही घर में बीवी की तरह क्यों न रखी गई हों।

नए दौर के बुद्धिजीवी को किताबों के भीतर क्या है?इसकी जानकारी कतई जरूरी नहीं, उसके घर में किताबों की संख्या कितनी है, इसकी लेटेस्ट सटीक जानकारी उसकी छाती पर चिपकी होनी चाहिए। आदमी असल में तीक्ष्ण बुद्धि में बुद्धिजीवी उतना नहीं होता, जितना उसके घर में रखी किताबें होने से होता है। यह किस मुए को पता कि आपने कितनी किताबें पढ़ीं?आज की तारीख में बुद्धिजीवी की बुद्धि के वजन का पता उसकी बुद्धि से कम, उसके घर में धूल चाट रही किताबों से लचपचाती, टूटती, बुढ़ापे में बुढ़ापे के भार से झुकी कमर की तरह किताबों से लदी शैल्फों से अधिक लगता है। घर में रखी किताबें किसी भी गधे के बुद्धिजीवी होने का आधा पुख्ता सबूत होती है। किसी के घर में रखी किताबों को देखकर बाहरवाला रत्ती भर भी समझदार हो तो मजे से गच्चा खा जाता है, शर्त इतनी है कि वह जुबान खुलवाने की लाख कोशिश करवाने के बाद भी अपनी जुबान न खोले। ऐसा होने पर मेरा दावा है कि कोई उसके बुद्धिजीवी होने पर सवाल उठाना तो दूर, उँगली तक नहीं उठा सकता। गधे तक को आधा बुद्धिजीवी उसके घर में रखी किताबें बना देती हैं और आधा बुद्धिजीवी वह अपना मुँह बंद रख बना रह सकता है।

मित्रो! विशुद्ध बुद्धिजीवी वह नहीं होता, जिसके पास बुद्धि होती है। बुद्धिवाले तो एक से एक अपने आसपास मँडराते मच्छरों की तरह अब बारहों महीने से मिल जाएँगे, पर किताबों वाला बुद्धिजीवी आपके शहर में शायद ही कोई मिले। जो मिले तो ज्यादा सोच विचार किए बिना उसे जी भर गले लगा लेना। ये जमाना बुद्धिजीवियों का नहीं, इन वैसे बुदबुदीजीवियों का है, विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक। पारंपरिक बुद्धिजीवी अब बचे भी कहाँ है!

सफल बुद्धिजीवी वह नहीं, जो सारी उम्र बुद्धि को किताबों में उलझा नष्ट करने के बाद भी खुद को खुद ही बुद्धिजीवी घोषित कर पगलाया इतराता फिरता है। मेरे दौर का बुद्धिजीवी बुद्ध के सदुपयोग के अतिरिक्त और सब कुछ करता है। सफल बुद्धिजीवी वह जो बुद्धियाए कम, गरियाए अधिक। यह दौर ज्ञान की धीमी–धीमी आँच पर पकने का दौर नहीं, तुतलाना शुरू करते ही अपनी–अपनी डार चुन जो मन में आए बकने का दौर है, औरों की जेब से चाय पी मुँह खुलते ही अपनी प्रशंसा में कसीदे पढ़ने का दौर है। आज सफल बुद्धिजीवी वह है, जो कड़वी घूँट कर आठा–दस हजार की आलू–प्याज के लिए लिफाफा बनने को मजबूर किताबें कबाड़ी से खरीद, किताबों से उलझे बिना उनसे समझौता कर विशुद्ध बुदबुदीजीवी हो हर कहीं सम्मानित रहता है। असल में किताबों से समझौता में जो सुख है, वह उनसे उलझने में कहाँ?

लोकवाणी

संपादक जी,

सुसंभाव्य त्रैमासिक पत्रिका, भागलपुर
महोदय,

'सुसंभाव्य' पत्रिका का अप्रैल, 2016 अंक डाक से मिला। आभार। पत्रिका का कलवेर आकर्षक है। अच्छा कागज और सुंदर छपाई के लिए बधाई। मृदुला गर्ग और डॉ. अखिलेश के संस्मरण बहुत अच्छे लगे। पुराने इलाहाबाद के बड़े साहित्यकारों के जमघट और विमर्श की स्मृतियाँ ताजा हो गयीं। नीलम कुलश्रेष्ठ की कहानी 'नाकाबंदी' ने मन को गहरे तक छुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'नयी रोशनी', सुधा राजे की कविता 'मिताक्षरा' के साथ भेंटवार्ता, गजलों, कविताओं, लघुकथाओं आदि से परिपूर्ण यह अंक रोचक और पठनीय है। इसके लिए संपादक मंडल को बधाई। शुभकामनाएँ!

–भोलानाथ कुशवाहा, बासलीगंज, मिर्जापुर, यू.पी. 231001, 09453764968

सम्माननीय संपादक जी,
सुसंभाव्य त्रैमासिक पत्रिका, भागलपुर

आपके द्वारा संपादित 'सुसंभाव्य' का जुलाई, 2016 अंक को पढ़ा। इसमें प्रकाशित सभी स्तम्भ (आलेख) पठनीय, स्मरणीय व संग्रहणीय हैं। विशेष इसमें प्रकाशित आलेख 'बुद्धं शरणं न गच्छामि' ने मुझे काफी प्रभावित किया। इसमें एक औरत की व्यथा–कथा ने मुझे अंदर तक झकझोर कर रख दी। यह आलेख समाज के सम्भ्रान्त, सुशिक्षित परिवारों के दकियानुसी मानसिकता व विचारों पर कड़ा प्रहार करता है कि किस तरह बच्चे की प्राप्ति के लिए औरतों को नरक के कुंड में ढकेल दिया जाता है। मैं उस औरत की बहादुरी को नमन करता हूँ, जिसने अपनी बुद्धि और विवेक का परिचय देकर अपनी अस्मत बचा ली और समाज को एक नयी दिशा प्रदान की।

–सुनील कुमार, मोक्षदा बालिका इंटर स्कूल, भागलपुर, मो0 7549527067

महोदय,

'सुसंभाव्य' का जुलाई, 2016 अंक प्राप्त हुआ। इसके पहले भी एक अंक प्राप्त हुआ था। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद! वसुधैव कुटुम्बकम् की उदात्त भावभूमि पर आधारित आपके विश्वग्राम की परिकल्पना अद्‌भुत है। साहित्य की सार्वभौमिकता के परिप्रेक्ष्य में आपके कथन अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होते हैं–साहित्य की आत्मा एक है, चाहे वह किसी भी भाषा, किसी भी काल, किसी भी विधा में लिखी गई हो या उसका कोई भी कलेवर हो। साहित्य हमारा जीवन, हमारी संवेदना है। इसमें हमें विश्वास और मूल्यों का जीवन प्राप्त होता है। साहित्य की यही समावेशी प्रकृति जन– सामान्य को आपस में जोड़कर रखने का विश्वास प्रदान करती है।

कविताओं मे डॉ. महाश्वेता देवी की 'मन की आग, नयन में सागर एवं रविशंकर सिंह की मिट्टी की याद' पसंद आयी। डॉ. गिरिजाशंकर मोदी से बातचीत के दौरान दलित चिंतक रमणिका गुप्त जी के व्यक्तित्व का जुझारूपन पूरी ओजस्विता के साथ उभरा है। डॉ. विजय कुमार वर्मा का आलेख 'स्वामी विवेकानंद और उनके संदेश' सारगर्भित एवं शिक्षाप्रद लगा। आर.के.नीरद का धारा के विरुद्ध हरिवंश की पत्रकारिता एवं प्रयोग एक चिंतन प्रधान व सारगर्भित आलेख है, कुछ प्रूफ की कमियाँ अखड़ती हैं।

लोकवाणी के अंतर्गत प्रकाशित पाठकों के पत्र सुसंभाव्य की स्वीकार्यता को सिद्ध करते हैं। साहित्य जगत में सुसंभाव्य एक सुखद आश्वस्ति के रूप में उभर रही है। मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

–आचार्य बलवन्त, कॉटनपेट, बेंगलूर, 09844558064

आदरणीय
सादर नमस्कार,

आपके द्वारा 'सुसंभाव्य' अप्रैल, 16 का अंक प्राप्त हुआ। हृदय से आभार, पत्रिका की सार्थकता शीर्षक से लग गई, यथा नाम तथा गुण, अंक बहुविध विपुल साहित्यिक सामग्री से सुसमृद्ध है, सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका को अथक प्रयास से स्तरीय बनाने में आपका योगदान, परिश्रम स्पष्ट दृष्टिगत हो रहा है। संस्थापक की कलम से पुरोवाक् के अंतर्गत साहित्यकार का दायित्वबोध दर्शाते हुए राष्ट्रीयता, गिरती हुई संस्कृति मानवीयता पर कलम चलाते हुए समाज को सही दिशा निर्देश दिया जाना सराहनीय लगा। कुछ लोग ए.सी. में बैठकर आम आदमी की पीड़ा गरीबी का दु:खदर्द को खूब लिख रहे हैं, परन्तु आम आदमी को संवेदना, सहानुभूति के दो शब्द बोलने से कतराते हैं, कथनी और करनी में फर्क है।

'जोस दि दियोगो' की कविता प्रभावकारी हौसले की बात करती है। पत्रिका के सभी स्तम्भ की सामग्री पठनीय है, कहानी, कविताएँ अच्छी हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'नई रोशनी' तथा नीलम कुलश्रेष्ठ की नाकाबंदी अच्छी लगी। कविता, गीत, ग़ज़ल में सुधाराजे, कल्पना मिश्र, महावीर राजी विजय कुमार आदि की रचनाएँ ठीक हैं। कविताओं को खूबसूरती से पत्रिका में स्थान देना आकर्षक लगा, सजावट भी एक कला है। संस्मरण, लेख सारगर्भित एवं संग्रहणीय हैं। भेंटवार्ता, आलेख पठनीय है। लघुकथा 'औकात' उद्देश्यपरक है, मानवीकरण है। समीक्षाएँ विस्तृत रूप से लिखी गई हैं, सराहनीय है। पत्रिका आवरण पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक सुंदर मुद्रण से मोहक लगी। आपकी लगनशीलता कुशल संपादन को साधुवाद, सुसंभाव्य परिवार को हार्दिक बधाई शुभकामनाएँ!

–शिव डोयले, हरीपुरा,विदिशा (म.प्र.) 09685444352

प्रिय भाई दयानन्द जी,
नमस्कार,

'सुसंभाव्य' का जुलाई, 2016 अंक प्राप्त हुआ। सुसंभाव्य में समालोचना व मूल्यांकन की दिशा में आपकी सकारात्मक दृष्टि स्पष्टत: परिलक्षित होती है। 'पुरोवाक्' में आपका यह कथन समीचीन है कि साहित्यकार का दायित्व मनुष्य का अपना परिष्कार करना है; क्योंकि वह आत्मा का ही शिल्पी हुआ करता है। रहस्यमयता एवं ज्ञान की गरिमा के पर्याय अज्ञेय पर केन्द्रित कृष्ण बिहारी मिश्रजी के बेबाक संस्मरण 'मौन का सर्जनशील सौंदर्य' ने अंक को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बना दिया है। गिरिजाशंकर जी मोदी ने रमणिका गुप्ता की संघर्षशीलता को गहरे रेखांकित किया है। भाई अशोक सिंह ने 'एक बेचैन कवि का हलफनामा' के बहाने राजदेव सिन्हा की रचनाशीलता की संतुलित समीक्षा की है। नीरजा हमेन्द्र और नलिनी श्रीवास्तव की कहानियाँ मर्म को छूती हैं। रामकाव्य और विवेकानंद से जुड़े आलेख भी गौरतलब हैं। अशोक मिजाज की ग़ज़लों की समीक्षा करते हुए आपने ठीक ही लिखा है कि ग़ज़ल–लेखन समंदर में गोते लगाकर मोती चुनने जैसा दुष्कर कार्य है, जबकि प्राय: कंकड़ ही हाथ लगते हैं। कमोवेश संपादन का काम भी कुछ ऐसा ही है। बहरहाल, समर्पण भाव से इस वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति के लिए हार्दिक बधाई!

—भगवती प्रसाद द्विवेदी, मीठापुर, पटना, 09430600958

आदरणीय संपादक महोदय,
सुसंभाव्य, भागलपुर (बिहार)

'सुसंभाव्य' जुलाई, 2016 का अंक प्रथम बार मिला। घोर आश्चर्य एवं प्रसन्नता प्राप्त हुई। आपके बिना संपर्क के यह साहित्यिक पत्रिका मुझ तक पहुँचाई, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

'सुसंभाव्य' हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका का मुख्य पृष्ठ आकर्षक है। दो दिनों के अंदर पुरोवाक्, आलेख, पुस्तकचर्या, कविता, गीत, समीक्षा, कहानी, संस्मरण सभी सामग्री पढ़ गई। आपके द्वारा दी गई अशोक मिजाज की ग़ज़ल की समीक्षा प्रशंसनीय है। मन पुलकित हो गया। सभी लेखकों, कवियों की कलम को साधुवाद! भाषा एवं शैली उत्कृष्ट लगी। मुझे सोचने को बाध्य होना पड़ा अपनी साधारण शैली और भाषा के लिए। यह पत्रिका मेरे लिए प्रेरणा स्रोत है। आपके प्रति आभारी हूँ।

—ज्योति सिन्हा, धनबाद, झारखंड 09102899404

दयानन्द जी!

सुसंभाव्य साहित्यिक पत्रिका अपने नाम की सार्थकता सिद्ध कर रही है, इसके उत्तरोत्तर निखार के लिए मेरे आशा और विश्वास दोनो निश्चिन्त हैं। स्तुत्य प्रयास है संपादक मंडल का अप्रैल और जुलाई के अंक प्राप्त हुए, बेहतरीन शीर्षक के साथ कुछ अच्छे लेख जो सांस्कृतिक विरासत को सहेजते हुए नज़र आये, उन्हें पढ़ना अच्छा लगा सुसंभाव्य साहित्यिक निधि की संवाहक बने— इसी मंगल कामना के साथ...

डॉ० रचना
सोनभद्र
मो०—9451618235

सेवा में,
संपादक महोदय,
सुसंभाव्य त्रैमासिक पत्रिका
मान्यवर,

सुसंभाव्य का अप्रैल 2016 अंक मुझे मिला। वर्तमान दौर में बाजारवाद ने साहित्य लेखन को हाशिए के बाहर कर दिया है। वहीं आपने निःशुल्क पत्रिका निकालकर साहित्य सृजन की दुनिया में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं। पहली बार हमको पत्रिका मिली, जो काफी पठनीय और सराहनीय है।

सभी कविताएँ, गजल, कहानी, लघुकथाएँ, आलेख और खासकर भेंटवार्ता संपादकीय कुशलता को दर्शाती है। महेश शर्मा का गीत मन को छुनेवाला है। गुरुदेव की कहानी का क्या कहना?गुरुदेव की कहानी प्रकाशित कर खासकर नवोदित रचनाकारों के लिए आईना दिखाने का काम किया है। इसी तरह वरिष्ठ रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित करते रहें। कुल मिलाकर यह पत्रिका संतोषप्रद है। आपकी संपादकीय कुशलता के लिए आपको सलाम करता हूँ। आपको बहुत—बहुत बधाई व ढेरों शुभकामनाएँ। धन्यवाद!

—रविशंकर सिंह द्वारा आशुतोष सिंह
एम.पी. बाग, सी.के. रोड, आरा मो—9931495545

संपादक महोदय,
सुसंभाव्य त्रैमासिक पत्रिका
प्रिय महोदय,

'सुसंभाव्य' (अप्रैल 2016 अंक) प्राप्त हुआ। इससे पूर्व के अंक भी प्राप्त होते रहे हैं।

पत्रिका, सचमुच स्तरीय है। इसकी प्रिंटिंग गुणवत्ता, साज—सज्जा, रचना—चयन, संपादन—कौशल पाठक को बरबस प्रभावित करते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है, इसके नाम के साथ अंकित पंक्ति (सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका) में 'समीक्षा' शब्द का सन्निहित होना वर्तमान परिदृश्य में पत्रिकाओं द्वारा समीक्षा—कर्म की जिस प्रकार उपेक्षा की जा रही है, ऐसे में किसी पत्रिका की समीक्षा के लिए प्रतिबद्धता दर्शाना, वाकई, प्रभावित करता है। यह निःसंदेह स्तुत्य एवं अनुकरणीय है। पत्रिका के समीक्षा—केन्द्रित होने की विशिष्टता को बनाए रखिएगा।

अप्रैल अंक का संपादकीय (पुरोवाक्) अत्यंत सीमित शब्द—सीपियों में समसामयिक परिदृश्य की गहन पड़ताल करता है। संपादकीय 'गागर में सागर' जैसा मर्म समाहित किए हुए एक अत्यंत विचारोत्तेजक आलेख बन पड़ा है। 'अंतर्राष्ट्रीयता के हित के सामने राष्ट्रीयता के त्याग की बात हो' जैसे उदान—वचन पाठक की सुप्तप्राय चेतना को हठात् झंकृत कर डालते हैं। सर्वथा सशक्त एवं सटीक संपादकीय अभिव्यक्ति के लिए आपको हार्दिक साधुवाद!

अज्ञेय पर मृदुला गर्ग का संस्मरण 'एक छाया चेहरे से गुजरी जैसे पत्ता खड़का हो' अज्ञेय की आत्मनिष्ठ एवं गैर मिलनसार आम छवि से इतर उनकी एक परम आत्मीय एवं स्नेही इंसान की छवि प्रस्तुत करता है। अखिलेश के संस्मरण 'भूगोल की कला' में उनके रचनाकार की निर्मिति बेहद तरतीब से अभिव्यक्त होती है। इस संस्मरण को आद्योपांत पढ़कर उनके लेखक बनने का क्रम एव लेखन की कला दोनों पर प्रकाश पड़ता है।

रामकुमार कृषक का साक्षात्कार 'अग्निधर्मा' है, मगर इस आग का हम क्या करें! उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से पाठकों को अत्यन्त गहराई से परिचित कराता है। साक्षात्कार अच्छा बन पड़ा है। वहीं 'सिद्धांतकार' सुबह सिंहजी का परम सादगीपूर्ण व त्यागमयी व्यक्तित्व लेख में मोहनदास नैमिशराय जी की लेखनी ने उकेरा है।

नीलम कुलश्रेष्ठ की कहानी 'नाकाबंदी' में आईने पर चोंच मारती चिड़िया के अद्भुत रूप के माध्यम से बदलाव को आतुर स्त्री मनोदशा का प्रभावशाली निरूपण किया है। यह कहानी, निस्संदेह अच्छी कहानी बन पड़ी है। लेकिन वहीं रवीन्द्रनाथ टैगोर की कलम से निकली कहानी 'नई रोशनी' (यदि बेबाकी से कहा जाए तो) फीकी—फीकी लगती है।

पत्रिका में काव्य—रचनाओं को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। यह निस्संदेह अच्छी बात है 'कि कविता—विधा समाप्त होने जा रही है' जैसे लाख दुष्प्रचार एवं दुराग्रहों के बावजूद भी 'कविता' ही साहित्य की प्रमुख विधा रही है और रहेगी भी। इस अंक की कविताएँ भी प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से विजय कुमार सप्पति की 'सिलवटों की सिहरन' अपनी विशिष्टता का अहसास छोड़ती है।

'हिन्दी—मैथिली कथा साहित्य में ग्राम्य संस्कृति और नागार्जुन' (उमेश पंडित उत्पल), 'आदर्श हिन्दी लघुकथाएँ' (माधव नागदा), 'श्यामजी कृष्ण वर्मा : आधुनिक भारत के इतिहास' का विस्मृत अध्याय (डॉ. ऊषा निगम), 'कभी मोम कभी बर्फ सी पिघलती है जिंदगी' (डा. रविकांत), 'आदिवासी और धूणी तपे तीर '(डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल) भी अच्छे आलेख हैं, जो पाठकों को नितांत जानकारी व विमर्श प्रस्तुत करके उनके ज्ञान में अभिवृद्धि करते हैं।

इस पत्रिका के माध्यम से आप हिन्दी साहित्य के प्रचार— यज्ञ में अत्यन्त प्राणपन से जुटे हैं। पत्रिका गंभीर साहित्य प्रयासों को प्रतिबिम्बित करती है।

पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए आपको एवं आपकी समूची संपादकीय टीम को हार्दिक साधुवाद व बधाई! प्रयास यथावत् जारी रखने एवं पत्रिका के उत्तरोत्तर उत्थान के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

—मुकेश निर्विकार, बुलंदशहर यू.पी. 203001, 09411806433

सुसंभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर

designed by : birjoo kumar, bhagalpur # 9771512533